❀ श्रीश्री गौरांगमहाप्रभुर्जयति ❀

सानुवादम्

"ग्रन्थरत्नत्रिकम्"

श्रीपादविश्वनाथचक्रवर्त्तीजी विरचितम्

(चन्द्रिका, किरण, कणिका)

(१) रागवर्त्मचन्द्रिका, (२) उज्ज्वलनीलमणि-किरणः (३) भागवतामृतकणिका

प्रकाशक—

कृष्णदास बाबा

कुसुमसरोवर (ग्वालियर मन्दिर)

पो० राधाकुण्ड (मथुरा)

सम्वत् २०१६

न्यौछावर ॥)

❀ समर्पणपत्रम् ❀

भज–निताइ गौर राधेश्याम ।

जप–हरे कृष्ण हरे राम ॥

श्रीश्रीद्वारकेन्द्र-उपासक, साधुगुरुपरायण, जयपुर-राज्यान्तर्गत "गीजगढ़" स्थान निवासी, नित्य-धाम प्राप्त भक्तवर श्री कुशलसिंहजी के पुनीत स्मरण में यह ग्रन्थत्रय प्रकाशित होकर समर्पित है ?

भूमिका

प्रस्तुत रागवर्त्मचन्द्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण तथा भागवतामृतकरण इन तीनों ग्रन्थों के रचयिता महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथचक्रवर्ती जी का जन्म १६०६ शाक मतान्तर १६८६ शाक में वंगदेश स्थित मुर्शिदाबाद जिला सागरदीघि थाना के अधीन देवग्राम नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम श्रीनारायणचक्रवर्त्तीजी है। श्री विश्वनाथ जी बाल्यकाल से ही प्राथमिक पाठ का शेष कर सैदावाद में जाकर भक्तिशास्त्र संस्कृत का साथ ही का अध्ययन करने लगे थे। संकल्पकल्पद्रुम नामक ग्रंथ में स्वयं आप श्री नरोत्तमठाकुर महाशय की शाखा परम्परा में श्रीकृष्णचरणचक्रवर्त्ती जी को अपने परमगुरु तथा उनके पुत्र श्रीराधारमणचक्रवर्त्तीजी को गुरु करके बतलाया है। श्रीकृष्णचरणजी सैदावाद निवासी श्रीरामकृष्ण आचार्य्य के पुत्र एवं वालुचरनिवासी गंगानारायण चक्रवर्त्तीजी के दत्त पुत्र थे जोकि सैदावाद में रह कर भक्तिशास्त्र का अध्यापना कराते थे। विश्वनाथजी ने उन्हीं के पास भागवतादि भक्तिशास्त्र का अध्ययन किया था, विश्वनाथजी यद्यपि ज्ञातिपरिजन के अनुरोध से अल्पवयस में दारपरिग्रहित हुए थे तो भी उस में विन्दुमात्र आकर्षित नहीं हुए। शेष में समस्त परित्याग कर बृन्दाबन में आ गये एवं वहाँ उस समय के वैष्णव समाज के कर्णधार रूप बन गये। उन्होंने अनेकानेक वैष्णव ग्रन्थ का तथा गौड़ीय-गोस्वामियों के द्वारा विरचित अनेक भक्ति ग्रंथों की टीका का निर्माण कर वैष्णव समाज का महान् कल्याण साधन किया। उन के वेशाश्रय का नाम "हरिबल्लभ" था। वंगभाषा में तथा संस्कृतभाषा में अनेकानेक पद "हरिवल्लभ" नाम से प्राप्त है। श्रीयुक्तविश्वनाथ जी प्रगाढ़ पण्डित, महान् दार्शनिक, परम भक्त, श्रेष्ठ रसवेत्ता, उत्तम कवि, वैष्णव चूड़ामणि, तात्कालीन गौड़ीय वैष्णवों के अध्यक्ष रूप माने जाते हैं। उस समय उनके नाम से यह श्लोक प्रसिद्ध हुआ कि-

विश्वस्य नाथरूपोऽसौ भक्तिवर्त्मप्रदर्शनात् ।
भक्तचक्रे वर्त्तितत्वात् चक्रवर्त्याख्ययाऽभवत् ॥

अर्थात्-भक्तिमार्ग दिखलाने के कारण विश्व का नाथ रूप तथा भक्त चक्र में (भक्त समाज में) उत्कर्ष रूप विद्यमान रहने के कारण "चक्रवर्त्ती" यह नाम उनका पड़ा है। वे जहाँ बैठ कर ग्रन्थ लिखते थे वहाँ वर्षा जल नहीं पड़ता था अर्थात् वे सब ग्रंथ जल लिप्त नहीं होते थे। ऐसा कहा जाता है कि-उनके उत्तर काल में गोवर्द्धन के सिद्ध कृष्णदास बाबाजी महाराज ने मानसीगंगा में डूब कर तीन-चार दिवस के उपरान्त उनकी लिखित पुस्तकों का संग्रह किया था। श्रीचक्रवर्त्तीजी गौड़ीय समाज में श्रीपादरूपगोस्वामिजी का अवतार माने जाते हैं।

इन के द्वारा स्थापितविग्रह " श्रीगोकुलानन्द जी" बृन्दाबन में बिराजमान हैं। माघी शुक्ला पञ्चमी के दिवस श्रीराधाकुन्ड में श्रीचक्रवर्त्तीजी अन्तर्हित हुए हैं। बृन्दाबन पत्थरपुरा में इन की समाधि थी जो कि वर्त्तमान गोकुलानन्द जी में अपसारित हुई है। बालुचर में इन के वंशधर अभी भी मौजूद हैं। चक्रवर्त्ती जी ने वैष्णव समाज का बड़ा भारी उपकार किया है। जीब गोस्वामीजी के बाद गौड़ीय सम्प्रदाय का जो पतनारम्भ हो उठा था उस का पुनरुद्धार चक्रवर्त्तीजी ने ही किया है। गौड़ीय वैष्णव समाज में राधा गोविन्द की परकीया भावकी उपासना पद्धति श्रीमन्महाप्रभु जी से लेकर अब तक चल आ रही है। पद्मपुराण के पातालखंडीय वृन्दाबनमाहात्म्य के ४ मां अध्याय, सनत्कुमार संहिता के छत्तीसमाँ पटल, भागवतादि शास्त्र, रसाचार्य जयदेबादि महानुभावों के साहित्य, चण्डीदास विद्यापति आदि प्राचीन रसिकों की वाणियों से यह उपासना सुसिद्ध है। महाप्रभु ने इसी उपासना को परम महत्व दिया तथा श्रीरूपसनातनादि गोस्वामियों के द्वारा उस का उद्घाटन करवाया।

श्रीजीवगोस्वामी तक यह उपासना सुस्थिर रही। उन के बाद वह कुछ शिथिल सी हो गई। श्रीचक्रवर्त्तीजी ने निज अकाट्य युक्ति व शास्त्र

प्रमाणों से उसको ऐसा सुदृढ़ कर दिया कि जिस की भी भित्ति कभी टूट नहीं सकती । गौड़ीय समाज में ऐसी प्रसिद्धि है कि-चक्रवर्त्तीजी की विद्यमानता से कुछ पण्डितों ने परकियाभाव उपासना के विषय को लेकर नाना वाद वितण्डा किया था, परन्तु चक्रवर्त्तीजी ने निज प्रगाढ़ विद्वत्ता तथा अकाट्य युक्ति प्रमाणों के द्वारा विपक्षियों को परास्त कर उस मत को सुदृढ़ कर दिया । वे सब पण्डित मात्सर्य्य में आकर एकान्त भ्रमणशील चक्रवर्त्ती के प्राणनाशार्थ उद्यत हुए । पण्डितों ने चक्रवर्त्ती जी को न देख कर दो तीन सहचरी के साथ पुष्प विनती हुई एक ब्रजबालिका देखी । पण्डितों ने ब्रजबालिका रूप धारी चक्रवर्त्तीजी से पूछा । लाली ! महात्मा चक्रवर्त्ती को तुमने देखा क्या ? बालिका ने कहा—देखा तो था परन्तु कहाँ चल दिये होंगे । बालिका का कटाक्षपात–भावभङ्गि–मन्दहास्य–सौन्दर्य्य-लावण्यादि से पण्डित गण मुग्ध होकर मत्सय्यंता को भूलकर पुनः परिचय पूछने लगे । उत्तर में बालिका ने कहा मैं स्वामिनी श्री राधिका की सहचरी हूं । इस समय आप निज श्वसुरालय जावट में विराजमान । कुछ गृह कार्य्य में निबद्धा है अतः प्रियतम श्रीकृष्णार्थ फूल लेने के लिये मुझे भेजी है । ऐसी कहती हुई वह अन्तर्द्धान हो गई । पण्डितों ने चक्रवर्त्तीजी को देखा तथा उनके चरणों में गिर कर क्षमा प्रार्थना की चक्रवर्त्ती जी के विषय में इस प्रकार अनेक अलौकिक बातें सुनने में आती हैं । गोविन्दभाष्य के रचयिता, प्रसिद्ध बलदेव-वद्याभूषणजी आपके भक्ति साधना के शिष्य थे । उन्हीं की शक्ति सञ्चार से विद्याभूषण जी विद्वत् शिरोमणि होकर जयपुर में विरोधी पण्डित समाज में विजय पताका फहरायी । उस समय समस्त ब्रजमण्डल में चक्रवर्त्तीजी की यशः श्रबल पताका उड़ रही थी तथा समस्त ब्रजमण्डल गौड़ीयों का अड्डा बन गया था । उधर जयपुर भी गौड़ीयों का एक केन्द्रीय स्थान बन चला क्यों कि ब्रज के गौड़ीय आचार्य्यों के स्थापित समस्त विग्रह प्रायः वहाँ पहुँच गये थे । श्रीरूप के गोविन्द, श्रीमधुपण्डित के गोपीनाथ, श्रीसनातन के मदनमोहन (ये तीन पहले बज्रनाभजीके द्वारा स्थापित हैं) श्रीजीवके राधादामोदर, जय-

देवजी के ठाकुर श्रीराधामाधवजी,श्रीलोकनाथ के राधाविनोदजी,श्रीगोकुलानन्द जी यवनों के अत्याचार से व्रज छोड़कर जैपुर में चले गये थे। अतः जयपुर में गौड़ीयों का अड्डा बन जाना स्वाभाविक था। उस समय गौड़ीयों के प्रभाव से असहनीय होकर कुछ पण्डित विपक्षी बन गये तथा गौड़ीयों के विरुद्ध नाना प्रकार के बात-वितण्डा उठाने लगे। शेष में बलदेवजी विद्याभूषण वहाँ जाकर विरोधियों को पराजित कर अपनी विजय पताका फहरायी। उसी समय गोविन्दजी की आज्ञा से ग वन्दभाष्य की रचना हुई। विरोधियों के द्वारा निष्कासित श्रीजी विग्रह पुनः गोविन्दजी के वामभाग में विराजमान हुई। विरोधी पण्डितों ने जयपुर महाराज को कुयुक्ति देकर यह समझाया था कि "श्रीराधिका तो ग्वालिनी है अतः गोबिन्दजी के बामभाग में रहना अवैदिक है"। महाराज ने उनके इस युक्ति में आकर श्रीजी को वहाँ से हटा कर अन्यत्र विराजमान करवाया था वह बात चक्रवर्तीजी के पास पहुँची। वे सुनकर हंसने लगे एव कहने लगे कि श्रीजी गोविन्दजी से मानिनी हो कर अन्यत्र रूठ गयीं। मान टूट जाने पर पुनः आजावेगी। विश्वनाथजी उस समय राधाकुंड में निवास करते थे, उन्होंने व्रज से बाहिर न जाने की प्रतिज्ञा ले ली थी।

जयपुर के गौड़ीय वैष्णवों के द्वारा विचार कराने के लिये आह्वाहित होने पर भी वार्द्धक्यता के कारण नही जा सके, परन्तु उन्होंने अपने छात्र बलदेव विद्याभूषणजी को शक्ति संचार कर विचारार्थ भेजा। उसी समय गलता स्थान में माध्वगौडेश्वर सम्प्रदाय का अन्य तीनों सम्प्रदाय के साथ आचार्य्य खम्भ गढ़ा। जो कि विरोधियों के द्वारा कुछ काल के लिये छिन्न भिन्न कर दिया गया था।

गीताश्रम गोरखपुर से प्रकाशित कल्याण पत्रिका वेदान्ताक पृ० ६९७ में (जिसके सम्पादक हनुमान प्रसाद पोद्दारजी हैं) विश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी को निम्बार्क सम्प्रदाय अन्तर्गत होना बतलाया गया है। शायद सम्पादक की

अ वधानतासे यह हुआ है । हमने इस विषय में सम्पादक महोदयको एक पत्र दियाथा, उत्तरमें ५-१०-४६केपत्रमें उन्होंने बतलायाकि आगे जबकभी वेदान्तांक निकलेगा तब इसका संशोधन होगा । किसी अंक में किसी से संशोधन किया भी गया परन्तु उसमें अधिक अनवधानता दिखलायी गयी । दो चक्रवर्त्तीजी की सृष्टि हो गई । जिससे अत्यन्त कष्ट कल्पना हुई । हाल में—बलदेव अधिकारी राधाकान्त मन्दिर मथुरा ने श्रीयमुनास्तोत्र नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया है । उसके ५५ पृष्ठ पर विश्वनाथ चक्रवर्त्ती जी को निम्बार्की बतलाया गया है, जिसका लेखक बलदेव दास अधिकारी है । विषय "सम्प्रदाय के कुछ एक प्रसिद्ध आचार्य्य" है । जिसमें ७ महापुरुषों का उल्लेख है । ७ संख्या में विश्वनाथ चक्रबर्त्ती जी का उल्लेख है । यह एक अधिक भूल है । अगर भ्रम वशः लिखा गया तो लेखक तुरन्त ही अपना भ्रम का संशोधन कर दें । 'आपने भागवत पर टीका लिखी है" यह भी परिचय में कहा गया है ।

श्रीमद्भागवत के टीकाकार विश्वनाथचक्रवर्त्तीजी महाप्रभुचैतन्यदेव के उपासक, गौड़ीय सम्प्रदाय के एक निष्ठ आचार्य्य, परकीयावादी, रागमार्ग के पथिक, शुद्ध ब्रज उपासक हैं । उधर निम्बार्कीय आचार्य्यगण द्वारिका ब्रज दोनों के उपासक, स्वकीयावादी, विधिमार्ग के पथिक, मिश्रित ब्रज उपासक हैं । गौड़ीयों का दार्शनिक सिद्धान्त "अचिन्त्य भेदाभेद" तथा निम्बार्कीयों का "स्वाभाविक भेदाभेद" वाद है । विद्वत्वर बलदेव उपाध्याय ने भारतीय दर्शनमें केवल "भेदाभेद" इस शब्द मात्रको देखकर गौड़ीयोंका भेदाभेद निम्बार्कीयों का आधार पर ऐसा लिख दिया है । परन्तु उन्होंने स्वाभाविक तथा अचिन्त्य शब्द का विरोधत्व अर्थात् दोनों मे आकाश पाताल भेद है उसे देखा नहीं । श्रीजीव ने स्वाभाविक भेदाभेद बाद का सर्व सम्वादिनी में खण्डन किया है । गौड़ीय सम्प्रदाय के दार्शनिक भित्ति का स्थापक श्रेष्ठतम आचार्य्य श्रीजीव गोस्वामी जी हैं । खण्डित बचन कभी आधार रूप नहीं माना जाता है । आपने सर्व सम्वादिनी में कहा है—"भेदाभेदवादे तु ब्रह्मण्येवोपाधि-संसर्गात्तत्प्रयुक्ता जीवगतदोषा ब्रह्मण्येव प्रादुःष्युरिति निर्दोषकल्याणगुणब्रह्मो-

पदेशाविरोधादेव परित्यक्ताः स्युः। स्वाभाविकभेदाभेदवादे तु ब्रह्मणः स्वत एव जीवभावाभ्युपगमात् दोषाश्च स्वाभाविका भवेयुरिति पूर्ववदेव दोषाः'' ॥

उपासना विषय पर प्रस्तुत रागवर्त्म चन्द्रिका में चक्रवर्ती जी कहते हैं कि

"तानि चार्च्चनभक्तावहंग्रहोपासनामुद्रान्यास-द्वारकाध्यान—रुक्मिण्यादि पूजादीन्यागमशास्त्रविहितान्यपि नैव कार्य्याणि'' पृष्ठ—१०

स्वयं रूपगोस्वामिजी ने भक्तिरसामृतसिन्धु ग्रन्थ में कहा है—

"रिरंसां सुष्ठु कुर्व्वन् यो विधिमार्गेण सेवते।
केवलेनैव स तदा महिषीत्वमियात् पुरे'' ॥

"अहंग्रहोपासना—न्यास—मुद्रा—द्वारकाध्यान—महिष्यर्च्चनादीन्यपराकाणि न कर्त्तव्यानि''। पृष्ठ—१६

"तत्र विधिमार्गेण राधाकृष्णयोर्भजने महावैकुण्ठगोलोके खल्वविविक्त स्वकीयापरकीयाभावमैश्वर्य्यज्ञानं प्राप्नोति। मधुरभावलोभित्वे सति विधिमार्गेण भजने द्वारकायां श्रीराधासत्यभामयोरैक्यात् सत्यभामापरिकरत्वेन स्वकीयाभावमैश्वर्य्यज्ञानमिश्रमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति। रागमार्गेण भजने व्रजभूमौ श्रीराधापरिकरत्वेन परकीयाभावं शुद्धमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति''। पृष्ठ—१६

गौड़ीय सम्प्रदाय की उपासना भक्ति रागमार्ग को लेकर चलती है, जिसको स्वारसिकी उपासना कहते हैं। यह राग मन का धर्म्म है जो मानसिक सेवा रूप से केवल विशुद्ध सत्वमय मन में संचालित होता है।

अन्यान्यों उपासना तो विधि को लेकर चलती है। श्रीचैतन्यचरितामृत में कहा है—

"मने निज सिद्ध देह करिया भावन।

वेदान्तस्यमन्तक में बलदेवजी ने कहा है—

'स च पुरुषोत्तमः क्वचिद्द्विभुजः क्वचिच्चतुर्भुजः [क्वचिदष्टभुजश्च पठ्यते।'' आनन्दाख्यसंहितायान्तु रूपत्रयमुक्तं "स्थूलमष्टभुजं प्रोक्तं सूक्ष्मं चैव चतुर्भुजं। परन्तु द्विभुजं प्रोक्तं तस्मादेतत्त्रयं यजेत्''। "तेषु चारुताधिक्यात् कृत्स्नव्यक्तेश्च द्विभुजस्य परत्वमुक्तं''

निम्बार्की आचार्यों ने द्वारका उपासना को ही प्राधान्यता दी है जो कि गौड़ीयों के रागमार्ग में अपकारक रूप माना जाता है।

जैसा कि—प्राचार्य्य धुरन्धर पुरुषोत्तमाचार्य्य नें "अंगे तु बामे वृषभानुजां मुदां विराजमानामनुरूपसौभगां"

इस दशश्लोकी पद्य भाष्य में निर्णय दिया कि—

"तथा च रुक्मिणीसत्यभामाव्रजस्त्रीविशिष्टः श्री भगवान् पुरुषोत्तमो बासुदेवः साम्प्रदायिभिर्वैष्णवैः सदोपासनीयः। द्विभुजश्चतुर्भुजश्च स्वप्रीत्यनुरूपेणोभयबिधत्वात् तस्य नात्र तारतम्यभावः' ।

आगे—"उभयविधस्यापि ध्यानस्य मोक्षहेतुत्वश्रवणादुभयस्य तुल्यफलत्वाद् ध्येयत्वाऽविशेष इति सांप्रदायराद्धान्तः"

इस प्रकार उपासनामार्ग में गौड़ीय-निम्बार्कीयों का आकाश पाताल भेद है। अतः उपाध्यायजी को गौड़ीय सम्प्रदाय को निम्बार्क सम्प्रदाय के आधारीभूत मान लेना निराधार ठहरता है।

अस्तु प्रस्तुत प्रकाशन में रागवर्त्म चन्द्रिका, उज्वलनीलमणिकिरण, वृहद्भागवतामृतकण ये चक्रवर्त्तीजी के तीनों ग्रन्थ एकही साथ मुद्रित किये जाते हैं। रागबर्त्म चन्द्रिका रागमार्ग का एक महान् उपादेय ग्रन्थ है, इसमें संक्षेपतः रागमार्ग का अद्भुत चित्रण किया गया है। इससे राग तत्व का यथार्थ ज्ञान प्राप्त हो जाता है। बृन्दाबन चारि सम्प्रदाय आश्रम से श्रीमान् बन्धुवर रामदास शास्त्री जी द्वारा चक्रवर्त्तीजी के भक्तिरसामृतसिन्धु, वृहद्भागवतामृतकण, माधुर्य्यकादम्बिनी ये तीन ग्रंथ एक ही साथ सानुबाद देवनागरीलिपी में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। उसी उमय हमारी प्रवल इच्छा हुई थी कि रागमार्गचन्द्रिका सा अद्भुत ग्रन्थ का अवश्य देवाक्षरों में प्रकाशन होना चाहिये। अतः मैंने तुरन्त ही उसका अनुबाद कर लिया था। परन्तु जब कि उसका प्रकाशन समय नहीं आने पाया था। जयपुर गोजगढ़ निवासी, भक्त प्रबर, महात्प्रेमी श्रीमान् कुशलसिंहजी उस अनुवाद को प्रकाशित कराने के लिये जयपुर ले गये मैं भी वहुत आग्रह के साथ उनको मूल ग्रंथ का देबाक्षर में लिख कर उसके साथ वह अनुवाद दे दिया। उनकी अस्वस्थता के कारण उस कार्य्य से कुछ विलम्ब हो गया एवं मेरा भी उन दिनों में जयपुर नहीं

जाना हुआ । उधर उन महान् आत्मा का तिरोधान हो गया । आप नित्यधाम में पहुँच गये । अतः ग्रन्थ प्रकाशन में महान् बाधा पहुँच गयी । यह प्रभु की इच्छा मान कर चुप-चाप रहा । अब उसका समय आ गया । उक्त महान् आत्मा के सुयोग्य पुत्र, श्रीमान् मानधातासिंहजी ने उस अनुवाद सहित मूल ग्रंथ को हमारे पास भेज दिया साथ ही प्रकाशनार्थ धन की सहायता भी दे दी । जब कि ग्रंथ प्रेस में छप गया तब मेरा विचार हुआ कि इसके साथ उज्वलनीलमणि किरण का प्रकाशन हो जाना चाहिये जो कि भक्तभारत पत्रिका के सम्पादक रामदासशास्त्री के द्वारा प्रकाशित में वह कार्य्य बाकी रह गया । इसका अनुवाद करने में प्रवृत्त हुआ, परन्तु मैंने सोचा जब कि पूर्वाचार्य्य रसिकदासजी के द्वारा किये हुए उज्वलनीलमणिकिरण एवं बृहद्-भागवतामृतकण के पद्यबन्ध प्राचीन अनुवाद हमारे पास मौजूद है तो मैं स्वतन्त्र रूप से इसका अनुवाद क्यों करू । अतः अनुवाद करने में निवृत्त हुआ एवं रसिक दासजी के द्वारा किये हुए दोनों ग्रन्थोंके अनुवाद का प्रकाशनार्थ तत्पर हुआ । रसिकदासजी के दोनों अनुवाद बहुत सुन्दर एवं सरल है । आप ने बड़ी चाह के साथ सम्प्रदाय भेद भाव भूल कर दोनों का अनुवाद किया है । यह एक महाप्रभु की कृपा व उस समय रसिक शिरोमणि रसाचार्य्य महान् विद्वान महाप्रभु के परिकररूप में प्रकट श्री चक्रवर्त्तीजी की कृपा का अद्भुत परिचायक है । उन्होंने स्वयं ऐसा लिखा है । श्रीयुत रसिकदासजी श्रीलगोस्वामी हरिवंशजी के अनुगत व्रजभाषा के एक महान कवि माने जाते हैं । उन्होंने दोनों ग्रन्थों के प्रारम्भ में अपने उपजीव्य चरण श्री हरिवंश गोस्वामी जी का वन्दना रूप मंगलाचरण किया है । इधर चक्रवर्त्ती जी के ऊपर उन की अटूट श्रद्धा थी । उन्ही की कृपा-स्फूर्त्ति लेकर आपने इन दोनों ग्रन्थों का अनुवाद किया है । अस्तु रसिकसमाज इन ग्रन्थों का सरस आस्वादन करेगा ।

॥ इति ॥

❀ रागवर्त्मचन्द्रिका ❀

प्रथमः प्रकाशः

—***—

श्रीरूपवाक् सुधास्वादिचकोरेभ्यो नमो नमः ।
येषां कृपालवैर्वंदये रागवर्त्मनि चन्द्रिकाम् ॥ १ ॥

उन श्रीरूपगोस्वामी के वचन सुधा आस्वादनकारी भक्त-चकोर समूह का पुनः पुनः नमस्कार करता हूँ कि जिनकी कृपा कणिका को लाभ करके मैं विश्वनाथ चक्रवर्त्ती "रागवर्त्मचन्द्रिका" नामक इस ग्रन्थ की रचना में समर्थ हो रहा हूँ ॥ १ ॥

श्रीमद्भक्तिसुधाम्भोधेर्बिन्दुर्यः पूर्व्वदर्शितः ।
तत्र रागानुगा भक्तिः संक्षिप्तात्र बितन्यते ॥ २ ॥

मैंने पहले "भक्तिरसामृतसिन्धुबिन्दु" नामक ग्रन्थ की रचना की थी उसमें रागानुगाभक्ति का संक्षेप में वर्णन किया है। अब इस रागवर्त्मचन्द्रिका ग्रन्थ में उसी का विस्तार के साथ वर्णन करता हूँ ॥ २ ॥

वैधीभक्तिभवेत् शास्त्रं भक्तौ चेत् स्यात् प्रवर्त्तकम् ।
रागानुगा स्याच्चेद्भक्तौ लोभ एव प्रवर्त्तकः ॥ ३ ॥

जिस भक्ति का प्रवर्त्तक शास्त्र होता है उसे "वैधी", भक्ति कहते हैं तथा जिस भक्ति का प्रवर्त्तक लोभ होता है उसे "रागानुगा" कहते हैं ॥ ३ ॥

भक्तौ प्रवृत्तिरत्र स्यात्तच्चिकीर्षा सुनिश्चया।
शास्त्रल्लोभात्तच्चिकीर्षु स्यातां दधधिकारिणौ ॥ ४ ॥

"श्रीकृष्ण-भजन अवश्य कर्त्तव्य है, नहीं तो महान् प्रत्यवाय हो सकता है" इस प्रकार शास्त्रशासन के भय से जिसकी श्रीकृष्ण भजन में प्रवृत्ति होती है वह वैधी भक्ति का अधिकारी है तथा श्रीकृष्ण के माधुर्य्य-सौन्दर्य्यादि गुणों को श्रवण कर उनमें लोभ उत्पन्न होने के पश्चात् श्री कृष्ण भजन में जिसकी प्रवृत्ति होती है वह रागानुगा का अधिकारी कहा जाता है। तात्पर्य—भजन नहीं करने पर पाप होता है यह शास्त्र का शासन है। अतः उस भय से भजन में इच्छुक होकर साधनादि करने वाले को (प्रथम) अधिकारी कहा जाता है। श्रीकृष्ण के माधुर्य्यादि सुन कर तथा उनकी प्राप्ति के लिये लोभी होकर भजन में जो प्रवृत्त होता है वह दूसरा (रागानुगा) के अधिकारी हैं ॥ ४ ॥

तत्र लोभो लक्षितः स्वयं श्रीरूपगोस्वामिचरणैरेव—

"तत्तद्भावादिमाधुर्य्ये श्रुते धीर्यदपेक्षते।
नात्र शास्त्रं न युक्तिञ्च तल्लोभोत्पत्तिलक्षणम् ॥

श्रीरूपगोस्वामीचरण ने स्वयं ही लोभ का इस प्रकार निर्देश किया है—"उन भावों के माधुर्य्य का श्रवण गोचर होने पर उस की प्राप्ति के लिये बुद्धि उत्सुक हो जाती है तब भक्त उस विषय में शास्त्र अथवा किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं करता है, यह लोभोत्पत्ति का लक्षण है।

व्रजलीलापरिकरस्थश्रृङ्गारादिभावमाधुर्य्ये श्रुते धीरिदं मम भूयात् इति लोभोत्पत्तिकाले शास्त्रयुक्त्यपेक्षा न स्यात

सत्याञ्च तस्यां लोभत्वस्यैवासिद्धेः। नहि केनचित् शास्त्रदृष्ट्या लोभः क्रियते नापि लोभनीयवस्तुप्राप्तौ स्वस्य योग्यायोग्यत्वविचारः कोऽप्युद्भवति किन्तु लोभनीयवस्तुनि श्रुते दृष्टे वा स्वत एव लोभ उत्पद्यते ॥ ५ ॥

पहले श्री कृष्ण के व्रजलीला परिकरों के शृङ्गारादि भावों का माधुर्य्य सुनकर हृदय में "उस प्रकार के भाव मुझे किस प्रकार लाभ हो सकेंगे" ऐसा लोभ उत्पन्न होता है इस प्रकार से लोभ के उत्पन्न होने पर उसकी बुद्धि शास्त्र अथवा किसी युक्ति की अपेक्षा नहीं करती है, क्योंकि जहाँ शास्त्र अथवा युक्ति की अपेक्षा रहती है वहाँ लोभ की सिद्धि नहीं हो सकती। कोई शास्त्र देखकर कभी लोभ नहीं करता अर्थात् लोभ की प्रत्याशा में कोई कभी शास्त्र आलोचना नहीं करता। लोभनीय वस्तु-प्राप्ति के लिये भी कभी कोई अपने में योग्य-अयोग्यता का नहीं देखता अर्थात् इसकी प्राप्ति में मेरी योग्यता है अथवा नहीं इसका विचार नहीं करता। वस्तुतः लोभनीय वस्तु जब श्रवण अथवा दृष्टि में गोचरीभूत होती है तब लोभ स्वतः ही उत्पन्न होता है॥५

सच भगवत् कृपाहेतुकोऽनुरागिभक्तकृपाहेतुकश्चेति द्विविधः। तत्र भक्तकृपाहेतुको द्विविधः प्राक्तन आधुनिकश्च। प्राक्तनः पौर्व्व-भविकतादृशभक्तकृपोत्थः; आधुनिकः—एतज्जन्मावधितादृशभक्त-कृपोत्थः। आद्ये सति लोभानन्तरं तादृशगुरुचरणाश्रयणम्। द्वितीये गुरुचरणाश्रयणानन्तरं लोभप्रवृत्तिर्भवति। यदुक्तम्—

"कृष्णतद्भक्तकारुण्यमात्रलोभैकहेतुका।
पुष्टिमार्गतया कैश्चिदियं रागानुगोच्यते" ॥ ६ ॥

वह लोभ फिर "भगवत्कृपाहेतुक" तथा "अनुरागिभक्त-कृपाहेतुक" भेद से दो प्रकार होता है। "भक्तकृपाहेतुक" लोभ

फिर प्राक्तन-आधुनिक भेद से दो प्रकार का है। जन्मान्तरीय भक्तकृपाजनित लोभको प्राक्तन तथा वर्तमान जन्म में भक्तकृपा-जनित लोभ को आधुनिक कहा जाता है। जिस का प्राक्तनलोभ मौजूद है वह लोभ स्फूर्ति होने के पश्चात् अनुरागी गुरु का चरणाश्रय करता है। जिसका प्राक्तन लोभ नहीं है वह अनुरागी गुरुचरणाश्रय के पश्चात् लोभ की प्राप्ति करता है। शास्त्र में कहा गया है—केवल श्रीकृष्णकृपा से तथा उनके भक्तजनों की कृपा से उत्पन्न जो लोभ है वह राग मार्ग प्रवृत्ति का एकमात्र मूल कारण है। इस रागमार्ग को कोई-कोई पुष्टिमार्ग भी कहते हैं॥६

ततश्च तादृशलोभवतो भक्तस्य लोभनीयतद्भावप्राप्त्युपाय-जिज्ञासायां सत्यां शास्त्रयुक्त्यपेक्षा स्यात्। शास्त्र विधिनैव शास्त्रप्रतिपादितयुक्त्यैव च तत्प्रदर्शनात् नान्यथा। यथा दुग्धादिषु लोभे सति कथं मे दुग्धादिकं भवेदिति तदुपायजिज्ञा-सायां तदभिज्ञाप्तजनकृतोपदेशवाक्यापेक्षा स्यात्। ततश्च गां क्रीणातु भवान् इत्यादि तदुपदेशवाक्यादेव गवानयनतद्घास-प्रदानतद्दोहनप्रकरणादिकं तत एव शिक्षेन्न तु स्वतः, यदुक्तमष्टम-स्कन्धे—

''यथाग्निमेधस्यमृतञ्च गोषु भुव्यन्नमम्बूद्यमने च वृत्तिम्।
योगैर्मनुष्या अधियन्ति हि तां गुणेषु बुद्ध्या कवयो विदन्ति॥७

अनन्तर, इस प्रकार के लोभ प्राप्त भक्त की उस लोभनीय भावबस्तु-प्राप्ति के उपाय जानने की इच्छा होती है, अतः उस अवस्था में भक्त की शास्त्र अथवा युक्ति की अपेक्षा देखने में आती है। क्योंकि केवल शास्त्रविधि अथवा शास्त्र प्रतिपाद्य युक्ति के द्वारा ही उस उपाय का प्रदर्शन होता है, अन्य किसी के द्वारा नहीं है। जैसा कि किसी का दुग्धादि वस्तु की महिमा सुन

कर लोभ उत्पन्न हुआ, पश्चात् "मैं किस प्रकार दुग्धादिवस्तु को प्राप्त करूँ" इस प्रकार प्राप्ति उपाय जानने के लिये उसकी इच्छा होती है। अतः उस समय उसने उस विषय में अभिज्ञ किसी मान्यव्यक्ति की अपेक्षा की। "तुम गौ लाओ" विश्वस्त मान्य के द्वारा इस प्रकार उपदेश पाकर वह गौ लाया तथा उसको तृणादि से तृप्त किया एवं किसी विश्वस्त जन से गो दोहनादि की विधि सीखी। उपदेश के बिना स्वयं कोई कुछ नहीं कर सकता। श्रीभागवत अष्टमस्कंध में कहा है—मनुष्य जिस प्रकार उपाय-परम्परा के द्वारा ही काष्ठ से अग्नि, गौ से दुग्ध, पृथ्वी से अन्नदि वस्तुओं को अपने पुरुषाकार, अर्थात् निज चेष्टा के द्वारा लाभ करता है ठीक उसी प्रकार हे भगवान्! आपके गुणों को बुद्धि के द्वारा लाभ किया जाता है, इस प्रकार अभिज्ञगण कहते हैं॥ ७॥

सच लोभो रागवर्त्मवर्त्तिनां भक्तानां गुरूपादाश्रयलक्षणमारभ्य स्वाभीष्टवस्तुसाक्षात्प्राप्तिसमयमभिव्याप्य "यथायथात्मा परिमृज्यतेऽसौ मत्पुण्यगाथाश्रवणाभिधानैः तथा तथा पश्यति वस्तु सूक्ष्मं चक्षुर्यथैवाञ्जनसंप्रयुक्तम्॥" इति भगवदुक्तेर्भक्तिहेतुकान्तःकरणशुद्धितारतम्यात् प्रतिदिनं अधिकाधिको भवति॥८॥

वह लोभ रागमार्गवर्ती-भक्तों के गुरुचरणाश्रय से लेकर अभीष्ट वस्तु साक्षात्कार पर्यन्त उत्तरोत्तर वृद्धि होती है। "मेरी पवित्र-कथा श्रवण अथवा कीर्त्तनादि के द्वारा चित्त जिस प्रकार उत्तरोत्तर परिमार्जित होता है, काँजर से लिप्त नेत्र जिस प्रकार अपने परिष्कार के अनुसार उत्तरोत्तर सूक्ष्मवस्तु का अवलोकन करता है ठीक उसी प्रकार भक्त सूक्ष्मवस्तु के दर्शन में उत्तरोत्तर समर्थ होता है" इस प्रकार भगवद् वचन के अनुसार साधन

भक्ति के द्वारा जिस परिमाण से चित्त शुद्ध होता रहता है ठीक उसी परिमाण से लोभ की उत्तरोत्तर वृद्धि होती है ॥८॥

उद्भूते तादृशे शास्त्रदर्शितेषु तत्तद्भावप्राप्त्युपायेषु "आचार्यचैत्यवपुषा स्वगतिं व्यनक्ति" इत्युद्धवोक्तेः, केषुचिद्गुरुमुखात् केषुचिदभिज्ञमहोदयानुरागिभक्तमुखात् अभिज्ञातेषु केषुचिद्भक्तिमृष्टचित्तवृत्तिषु स्वत एव स्फुरितेषु सोल्लाससमेतातिशयेन प्रवृत्तिः स्यात् यथा कामोऽर्थिनां कामोपायेषु ॥९॥

तदनुसार लोभ की उत्पत्ति होने पर रागानुगीय भक्त की शास्त्र प्रदर्शित उन लोभनीयवस्तुओं की प्राप्ति के उपाय समूह में उल्लास के साथ अतिशय प्रवृत्ति होती है। "आप बाहिर गुरुरूप से उपदेश के द्वारा तथा अन्तर में अन्तर्यामी रूप से सत् प्रवृत्ति के द्वारा मनुष्यों की विषयवासना दूर करते हुए अपने स्वरूप का प्रकाश करते रहते हैं" इस प्रकार उद्धवजी के वचन के अनुसार किसी का गुरुमुख से वा किसी का अभिज्ञ अनुरागी भक्त के मुख से लोभनीय वस्तु का अभिज्ञान होता है। किसी को भक्ति के द्वारा परिमार्जित चित्तवृत्ति में स्वतः ही स्फूर्त्ति होती है, जिस प्रकार कामियों की कामोपाय में स्वतः प्रवृत्ति होती है ठीक उसी प्रकार यह जानना चाहिये ॥ ९ ॥

तच्च शास्त्रं सर्वोपनिषत् सारभूतं, येषामहं प्रिय आत्मा सुतश्च सखा गुरुः सुहृदो दैवमिष्टमित्यादिवाक्यनिचयाकरश्रीभागवतमहापुराणमेव। तथा तत्प्रतिपादितभक्तिविवरणचञ्चु-श्री भक्तिरसामृतार्णवादिकमपि। तत्रत्यं वाक्यत्रयं यथा—

"कृष्णं स्मरन् जनञ्चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्।
तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्य्याद्वासं व्रजे सदा॥" इति

"सेवा साधकरूपेण सिद्धरूपेण चात्र हि ।
तद्भावलिप्सुना कार्य्या व्रजलोकानुसारतः ॥" इति
"श्रवणोत्कीर्त्तनादीनि वैधभक्त्युदितानि तु ।
यान्यङ्गानि च तान्यत्र विज्ञेयानि मनीषिभिः ॥" इति

त्रिकमत्र कामानुगापक्षे एव व्याख्यायते ॥ १० ॥

अब यहाँ प्रष्टव्य है कि इस प्रकार लोभविशिष्ट भक्त का अपेक्षणीय (आवश्यकीय) क्या है ? उत्तर में कहते हैं— समस्त उपनिषद् का सार स्वरूप श्रीमद्भागवत नामक महापुराण ही इस विषय का परमशास्त्र है, जो कि "मैं जिनके प्रिय, आत्मा, पुत्र, सखा, गुरु, बन्धु, देवता तथा इष्ट हूँ" इत्यादि वचनों का आधार अर्थात् भण्डार रूप है । तात्पर्य—ये सब वचन रागमार्ग में परिपोषक हैं तथा भागवत में इस प्रकार के हजारों वचन मौजूद हैं । श्रीभागवत प्रतिपादित भक्ति का जिस में सविस्तार वर्णन है उन भागवतोपकारक अर्थात् भागवतशास्त्र के परिपोषक "भक्तिरसामृतसिन्धु" आदिक ग्रन्थसमूह भी रागानुगीय भक्त को अपेक्षणीय हैं । भक्तिरसामृतसिन्धु नामक ग्रन्थ में ये तीनों वचन मौजूद हैं कि—(१) "प्रियतम श्रीकृष्ण तथा अभिलषित उनके प्रियजनों का स्मरण परायण होकर कथा में अनुरक्त हो निरन्तर व्रज में वास करें" (२) उस लोभनीय वस्तु के अभिलाषी-जन इस राग मार्ग में अकार व्रजवासियों का अनुसरण करते हुए साधक रूप तथा सिद्धरूप दोनों प्रकार की सेवा में रत होवें ।" और (३) वैधीभक्ति में जो-जो श्रवण-कीर्त्तनादि अङ्ग कहे गये हैं उन सबको इस रागानुगाभक्ति में भी अङ्ग रूप से जानना चाहिये । ये तीनों वचन (समस्त)रागानुगापक्ष में कहे गये हैं । मैं इन तीनों वाक्यों की

लोभवान् भक्त की शिक्षा के लिये केवल कामानुगापक्ष की ही व्याख्या करूँगा ॥ १० ॥

प्रथमतः कृष्णं स्मरन् इति स्मरणस्यात्र रागानुगायां मुख्यत्वं रागस्य मनोधर्म्मत्वात् । प्रेष्ठं निजभावोचितलीला-विलासिनं कृष्णं बृन्दावनाधीश्वरम् । अस्य कृष्णस्य जनञ्च कीदृशं निजसमीहित स्वाभिलषणीयं श्रीबृन्दावनेश्वरीललिता-विशाखा श्रीरूपमञ्जर्य्यादिकम् । कृष्णस्यापि निजसमीहितत्वेऽपि तज्जनस्य उज्ज्वलभावैकनिष्ठत्वात् निजसमीहितत्वाधिक्यम् व्रजे वासमिति असामर्थ्ये मनसापि । साधकशरीरेण वासस्तु उत्तर-श्लोकार्थतः प्राप्त एव । साधकरूपेण यथावस्थितदेहेन । सिद्धरूपेण अन्तश्चिन्तिताभीष्टतत्साक्षात्कारसेवोपयोगिदेहेन । तद्भावलि-प्सुना—तद्भावः स्वप्रेष्ठकृष्णविषयकः स्वसमीहितकृष्णजनाश्रयकश्च यो भावः उज्ज्वलाख्यस्तं लब्धुमिच्छता । सेवा मनसैवोपस्थापितैः साक्षादप्युपस्थापितैश्च समुचितद्रव्यादिभिः परिचर्य्या कार्य्या । तत्र प्रकारमाह—व्रजलोकानुसारतः साधकरूपेणानुगम्यमाना ये व्रजलोकाः श्रीरूपगोस्वाम्यादयः ये च सिद्धरूपेणानुगम्यमानाः व्रजलोकाः श्रीरूपमञ्जर्य्यादयस्तदनुसारतः । तथैव साधकरूपेणा-नुगम्यमाना व्रजलोकाः प्राप्तकृष्णसम्बन्धिनो जनाश्चन्द्रकान्तादयः दण्डकारण्यवासिमुनयश्च बृहद्वामनप्रसिद्धाः श्रुतयश्च यथा-सम्भवं ज्ञेयाः । तदनुसारतस्तत्तदाचारदृष्ट्येत्यर्थः । तदेवं वाक्य-द्वयेन स्मरणं व्रजवासञ्च उक्त्वा श्रवणादीनप्याह—श्रवणो-त्कीर्त्तनादीनिति । गुरुपादाश्रयणादीनि त्वाक्षेपलब्धानि । तानि विना व्रजलोकानुगत्यादिकं किमपि न सिध्येदित्यतः मनीषिभिरि ति मनीषया विमृश्यैव स्वीयभावसमुचितान्येव तानि कार्य्याणि न तु तद्विरुद्धानि ॥ ११ ॥

पहले "कृष्ण का स्मरण करते हुए" इस वचन की

व्याख्या कहते हैं। "स्मरण परायण होकर" यहाँ स्मरण की रागानुगा में प्रधानता है। "राग" मन का धर्म्म है। स्मरण भी मन के द्वारा होता है। प्रेष्ठ शब्द का अर्थ निज-भावोचित लीला-विलासी प्रियतम श्रीकृष्ण हैं, जो कि वृन्दावन के अधीश्वर हैं। उन श्रीकृष्ण के जन किस प्रकार के हैं? उत्तर में कहते हैं—निजसमीहित अर्थात् निज अभिलषणीय, श्रीवृन्दावनेश्वरी राधिका-ललिता-विशाखा-श्रीरूपमञ्जरी आदिक प्रिय परिजन हैं। यद्यपि श्रीकृष्ण निज अभिलषणीय है तो भी यहाँ उनके प्रिय-जनों में ही अभिलषणीयत्व का आधिक्य दिखलाया गया है। क्योंकि उज्ज्वलभाव में उनकी एकान्तनिष्ठा मौजूद है। "व्रज में वास करें" यहाँ असामर्थ्य होने पर मानस में ही सर्वदा वास कर सकता है। साधक शरीर में वास उत्तर वचन के अर्थ से अवगत होता है। साधकरूप से इस का अर्थ—"यथावस्थित कृष्णदास-रामदासादि शरीर से है।" सिद्धरूप का अर्थ—"अन्तर में चिन्तनीय निज अभीष्ट श्रीकृष्ण के साक्षात् सेवोपयोगी मंजरी आदिक देह से है।" उस भावलिप्सु का अर्थ—"निज प्रेष्ठ श्रीकृष्णविषयक तथा निजसमीहित श्रीकृष्ण के जनों का आश्रयक रूप जो ऊज्वलाख्य भाव है उसकी प्राप्ति के लिये इच्छुक होकर।" सेवा का अर्थ—"मानस में संगृहीत तथा साक्षात् में संगृहीत यथायोग्य द्रव्यादि के द्वारा परिचर्य्या।" अब सेवा के प्रकार को कहते हैं—व्रजवासियों के अनुसरण के द्वारा। साधकरूप का अनुसरण—श्रीरूपगोस्वामी आदिक व्रजवासियों का तथा वे सब, रूपगोस्वामी आदिक जिन का अनुसरण करते हैं उन श्रीरूप-मञ्जरी आदिक व्रजजनों का है। जो श्रीकृष्ण को प्राप्त होकर तत् सम्बन्धविशिष्ट हो गये हैं, वे सब साधक रूप से जनुगम्यमान

शास्त्रप्रसिद्ध चन्द्रकान्त और भी दण्डकारण्यबासी मुनिगण आदिक हैं तथा बृहद् वामनपुराण में प्रसिद्ध श्रुतियाँ यथासम्भव हैं। "व्रजवासियों के अनुसार" अर्थात् उन के सदाचरण देख कर। इस प्रकार दोनों वचनों से स्मरण तथा व्रजवास कह कर श्रवणादि साधन अङ्ग का तृतीयवाक्य के द्वारा कथन करते हैं। उक्त श्रवण-कीर्त्तनादि के द्वारा गुरुपादाश्रयादि अङ्ग समूह सूचित होते हैं उन सब अङ्गों के साधन के बिना, व्रजवासियों का अनुगमन आदि कुछ सिद्ध नहीं हो सकता। इस लिये मनीषिभि शब्द का प्रयोग किया गया हैं। वुद्धिमान निज बुद्धि के द्वारा विचार करते हुए निज भाव के उपयोगी साधनाँग समूह का आचरण करेंगे। भाव के विरुद्ध किसी आचरण को नहीं करना चाहिये।११

तानि चार्च्चनभक्तावहंग्रहोपासना-मुद्रा-न्यास-द्वारकाध्यान रुक्मिण्यादिपूजादीन्यागमशास्त्रबिहितान्यपि नैव कार्य्याणि भक्तिमार्गेऽस्मिन् किञ्चित् किञ्चित् अङ्गबैकल्येऽपि दोषाभावश्रवणात्।
यदुक्तम्—यानास्थाय नरो राजन् न प्रमाद्येत कर्हिचित्।
धावन् निमील्य वा नेत्रे न स्खलेन्न पतेदिह॥" इति॥
'न ह्यङ्गोपक्रमे ध्वंसो मद्भक्तेरुद्धवाण्वपि"॥ इति च॥

अङ्गबैकल्ये त्वस्त्येव दोषः। यान् श्रवणोत्कीर्त्तनादीन्-भगवद्धर्म्मानाश्रित्य इत्युक्तेः। "श्रुतिस्मृति-पुराणादि-पञ्चरात्र-बिधिं बिना। ऐकान्तिकी हरेर्भक्तिरुत्पातायैव कल्पते॥ इत्युक्तेश्च। लोभस्य प्रवर्त्तकत्वेऽपि निजभावप्रतिकूलान्युक्तानि सर्व्वाणि शास्त्रबिहितानां त्यागानौचित्यमितिबुद्ध्या यदि करोति तदा द्वारकापुरे महिषीजनपरिजनत्वं प्राप्नोति।
यदुक्तम—"रिरंसां सुष्ठुकुर्व्वन् यो बिधिमार्गेण सेबते।
केबलेनव स तदा महिषीत्वमियात्पुरे॥"
केबलेनैव कृत्सेनैव न तु निजभावप्रतिकूलान् महिषीपूजादीन्

कांश्चित् कांश्चिद्देशान् परित्यज्येत्यर्थः । "निर्णीते केवलमिति त्रिलिङ्गन्त्वेककृत्स्नयोः" इत्यमरः । केवलेन विधिमार्गेण पुरे महीषित्वं मिश्रेण मथुरायामिति व्याख्या नोपपद्यते । पुरे यथा महिषीत्वं तथा मथुराया किं रूपत्वम् ? कुब्जा-परिकरत्वमिति चेत् केवलवैधीभक्तिफलादपि मिश्रवैधीभक्ति-फलस्य अपकर्षः खलु अन्याय एव । "रामानिरुद्धप्रद्युम्न-रुक्मिण्या सहितो विभुः" इति गोपालतापनीश्रुतिदृष्ट्या रुक्मिणीपरिणयो मथुरायामित्यतो रुक्मिणी—परिकरत्वमिति व्याख्या तु न सार्व्वलौकिकी । राधाकृष्णोपासकः कथं कुब्जां वा रुक्मिणीं वा प्राप्नोति इति द्वितीयश्चान्यायः । वस्तुतस्तु लोभ-प्रवर्तितं विधिमार्गेण सेवनमेव रागमार्ग उच्यते विधिप्रवर्त्तितं विधिमार्गेण सेवनञ्च विधिमार्ग इति । विधिविनाभूतं सेवनन्तु श्रुतिस्मृत्यादिवाक्यादुत्पातप्रापकमेव ॥ १२ ॥

अर्च्चनाङ्गभक्ति में—अहंग्रहोपासना—मुद्रा—न्यास—द्वारकाध्यान-रुक्मिण्यादि के पूजनादि तन्त्रशास्त्र में विधिरूप से कहे जाने पर भी रागमार्ग के साधक उन का आचरण नहीं करें। क्योंकि ये सब अपने भाव के प्रतिकूल होते हैं। भक्तिमार्ग में कहीं कुछ अङ्गवैकल्य हो जाने पर भी उसमें दोष नहीं होता, ऐसा शास्त्र में कहा गया है। भागवत में कहा है—"हे राजन् ! इस भक्तिमार्ग में मनुष्य जिन भागवतधर्म्मों का आश्रय करते हुए प्रवर्त्तमान होता है उन में वह कभी प्रमादग्रस्त नहीं होता है यहाँ तक कि नेत्र मूँदकर इस मार्ग में भागने पर भी वह नहीं गिरता है।" "हे उद्धव ! भक्तिलक्षित इस परधर्म्म के उपक्रम में अङ्ग-वैगुण्यादि के आने पर भी किञ्चिन्मात्र भी नष्ट नहीं होता।" इस प्रकार अर्च्चनादिभक्ति में अङ्गहानि होने पर कोई दोष नहीं है। परन्तु अङ्गों की हानि हो जाने से अर्थात् अङ्गो के अनाचरण

अथवा अन्याचरण में दोष अवश्य होता है। भागवत में कहा है—अङ्गीरस जो जो भागवत धर्म हैं उनके आश्रय करते हुए यदि अङ्गधर्म्म की हानि हो उठे तब भी उसमें कोई दोषावकाश नहीं है। अन्यत्र भी शास्त्र में कहा है—श्रुति-स्मृति-पुराण-पञ्चरात्रादि आगमोक्त बिधि के बिना जो ऐकान्तिकी हरिभक्ति की जाती है वह अनिष्टकर उत्पात् के लिये हैं। यदि कोई लोभ में प्रवर्तित होता हुआ "शास्त्रविहित कर्म्मों का त्याग करना उचित नहीं है" इस प्रकार बुद्धि से निजभाव के प्रतिकूल द्वारका महिषियों के ध्यानादि अनुष्ठान करता है तब वह रागमार्ग से लब्ध (प्राप्त) व्रजपरिकरत्व को प्राप्त न होकर द्वारकापुर में महिषियों के परिजन-रूप को प्राप्त करता है। भक्तिरसामृतसिन्धु में कथन है—जो उत्कृष्ट रमणाभिलाष करते हुए अर्थात् सखी-मञ्जरी भाव को हृदय में रखते हुए केवल विधिमार्ग के अनुसार सेवन करते हैं वे द्वारकापुर में महिषीगणत्व का प्राप्त करते हैं। यहाँ केवल शब्द का तात्पर्य निजभाव प्रतिकूल महिषियों का ध्यानादि सर्व्वांश में परित्याग करना है। अमरकोष में केवल शब्द का अर्थ कृत्स्न अर्थात् सर्व्वांश में है ऐसा कथन है। केवल विधिमार्ग से द्वारका में महिषीत्व लाभ होता है तथा रागमार्ग से मिश्रित विधिमार्ग के द्वारा मथुरा में लाभ होता है इस प्रकार की व्याख्या नहीं घट सकती। अच्छा? द्वारकापुरी में महिषीत्व प्राप्त है मथुरा में किस रूप से लाभ है? यदि कहो कि कुब्जापरिकरत्व का लाभ है तब तुम्हारा बचन असङ्गत हो रहा है क्योंकि केवल विधिमार्ग से जो फल है उससे रागमिश्रित विधिमार्ग का फल उत्कृष्ट होना चाहिये। परन्तु यहाँ अपकृष्ट हो रहा है। यदि कहो कि गोपालतापनी के अनुसार रुक्मिणीपरिणय मथुरा में सिद्ध है। अतः मथुरा में रुक्मिणीपरिकरत्व लाभ होता है। यह भी सङ्गत

नहीं है। क्योंकि मथुरा में रुक्मिणीपरिकरत्व सर्वानुमोदित नहीं है। ऐसा स्वीकार करने पर भी इष्टसिद्धि न होकर अनिष्ट आ पड़ेगा। "राधाकृष्ण की उपासना करते हुए कुब्जापरिकर।कम्वा रुक्मिणीपरिजन को प्राप्ति करता है" यह एक दूसरा अन्याय खड़ा होता है। वस्तुत: लोभप्रवर्तित विधिमार्ग के द्वारा सेवन रागमार्ग तथा बिधिप्रवर्तित विधिमार्ग के द्वारा सेवन विधिमार्ग है। विधिके बिना सेवन अशुभजनक है अतः "श्रुति-स्मृति-पुराणादि के बिना" यह शास्त्रवचन घटता है ॥ १२ ॥

अथ रागानुगाया अङ्गान्यन्यानि भजनानि कानि कानि कीदृशानि किं स्वरूपाणि कथं कर्त्तव्यानि अकर्त्तव्यानि वेत्य-पेक्षायामुच्यते । स्वाभीष्टभावमयानि, स्वाभीष्टभावसम्वन्धिनी, स्वाभीष्टभावानुकूलानि, स्वाभीष्टभावाविरुद्धानि स्वाभीष्टभाव-विरुद्धानि इति पञ्चविधानि भजनानि शास्त्रे दृश्यन्ते। तत्र कानिचित् साध्यसाधनरूपाणि, कनिचित् साध्यं प्रेमाणं प्रति उपादानकारणानि, कानिचित् निमित्तकारणानि, कानिचित् भजन-चिह्नानि, कानिचिदुपकारकाणि कानिचिदपकारकाणि, कानिचित् तटस्थानि इति। एतानि बिभाज्य दर्श्यन्ते ॥ १३ ॥

अनन्तर,रागानुगाभक्ति के भजनाङ्ग क्या हैं? वे सब किस प्रकार हैं? उन के लक्षण क्या हैं? वे सब किस प्रकार कर्त्तव्य अथवा अकर्त्तव्य हैं? इन बातों को यदि कोई जानने की इच्छा करता है तो उन का विषय वर्णन करते हैं। शास्त्र में (१) स्वाभीष्ट-भावमय, (२) स्वाभीष्टभावसम्बन्धी, (३) स्वाभीष्टभावानुकूल. (४) स्वाभीष्टभाव अविरुद्ध तथा (५) स्वाभीष्टभावविरुद्ध ये पाँच प्रकार भजन देखने में आते हैं। उन में से कुछ तो साध्य के अर्थात् प्रेम के साधनस्वरूप, कुछ साध्य प्रेम के उपादानकारण-

स्वरूप, कुछ निमित्त कारणरूप, कुछ भजनचिन्हस्वरूप, कुछ साध्य के उपकारक, कुछ अपकारकरूप तथा कुछ तटस्थ अर्थात् न उपकारक न अपकारक हैं। अब इन को विभाग के द्वारा दिखाते हैं ॥ १३ ॥

तत्र दास्यसख्यादीनि स्वाभीष्टभावमयानि साध्यसाधन-रूपाणि। गुरुपादाश्रयतो मन्त्रजपध्यानादीनि साध्यं प्रत्युपादान-कारणत्वाद्भावसम्बन्धिनि "जपेऽत्यमनन्यधीः" इत्याद्युक्तेर्नित्य-कृत्यानि, "जप्यः स्वाभीष्टसंसर्गी कृष्णनाममहामनुः" इति गणो-द्देशदीपिकोक्तेः सिद्धरूपेणानुगम्यमानानामपि मन्त्रजपदर्शनात् उपादानकारणत्वेन भावसम्बन्धीनि "गाः सर्वेन्द्रियाणि बिन्दन् एव सन् मम गोपस्त्रीजनवल्लभो भवत्यभीष्टसंसर्गि कृष्ण नाम एव महामनुः सर्व्वमन्त्रश्रेष्ठ इत्यष्टादशाक्षरो दशाक्षरश्च मन्त्र एव अर्थादुक्तो भवतीति गणोद्देशदीपिकावाक्यार्थो ज्ञेयः। स्वीय-भावोचितनाम-रूप-गुण-लीलादिस्मरणश्रवणादीनि उपादानकार-णत्वात् भावसम्बन्धीनि। तथाहि—"नामानि रूपाणि तदर्थकानि गायन् बिलज्जो बिचरेदसङ्ग" इति। "शृण्वन्ति गायन्ति गृणन्त्य-भीक्ष्णः स्मरन्ति नन्दन्ति तवेहितं जनाः।" इत्याद्युक्तेरभीक्ष्ण-कृत्यानि। अत्र रागानुगायां यन्मुख्यस्य तस्यापि स्मरणस्य कीर्त्ती-नाधीनत्वमवश्यं बक्तव्यमेव कीर्त्तनस्यैव एतद्युगाधिकारत्वात् सर्व्वभक्तिमार्गेषु सर्व्वशास्त्रैस्तस्यैव सर्व्वोत्कर्षप्रतिपादनाच्च। तपांसि श्रद्धया कृत्वा प्रेमाढ्या जज्ञिरे व्रजे" इत्युज्ज्वलनीलमण्यु-क्तेरनुगम्यमानानां श्रुतीनां प्रेमाणं प्रति तपसां कारणत्वाब-गमात् कलावस्मिन् तपोऽन्तरस्य बिगीतत्वात् "मदर्थं यद्व्रतं तपः" इति भगवदुक्तेरेकादशीजन्माष्टम्यादिव्रतानि तपोरूपाणि इति निमित्तकारणानि नैमित्तिककृत्यानि अकरणे प्रत्यवायश्रवणान्नि-त्यानि। तत्रैवैकादशीव्रतस्यान्वये "गोविन्दस्मरणं नृणां यदेका-

दश्युपोषणम्" इतिस्मृतेरुपादानकारणम्मरणस्य लाभादंशेन भावसम्बन्धित्वमपि, व्यतिरेके तु "मातृहा पितृहा चैव भ्रातृहा गुरुहा तथा" इत्यादि स्कान्दादिवचनेभ्यो गुरुहन्तृत्वादिश्रवणान्नामापराधलाभः "ब्रह्मघ्नस्य सुरापस्य स्तेयिनो गुरुतल्पिनः" इति विष्णुधर्मोत्तरोक्तेरनपायिपापविशेषलाभश्च, इति निन्दाश्रवणादत्यावश्यककृत्यत्वम । किं बहुना "परमापदमापन्ने हर्षे वा समुपस्थिते । नैकादशीं त्यजेद् यस्तु तस्य दीक्षास्ति वैष्णवी। विष्ण्वार्पिताखिलाचारः स हि वैष्णव उच्यते ।।" इति स्कान्दवाक्याभ्यामेकादशीव्रतस्य वैष्णवलक्षणत्वमेव निर्दिष्टम । किञ्च वैष्णवानां भगवदनिवेदितभोजननिषेधात् "वैष्णवो यदि भुञ्जीत एकादश्यां प्रमादतः ।" इत्यत्र भगवन्निवेदितान्नस्यैव भोजननिषेधोऽवगम्यते। कार्तिकव्रतस्य च तपोऽंशेन निमित्तत्वं श्रवणकीर्त्तनाद्यंशेन उपादानत्वमपि । श्रीरूपगोस्वामिचरणानामसकृदुक्तौ कार्तिकदेवतेति कार्तिकदेवीत्यूर्ज्जदेवीति ऊर्ज्जेश्वरीति श्रवणाद्विशेषतः श्रीवृन्दावनेश्वरीप्रापकत्वमवगम्यते । "अम्बरीषशुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु" इति स्मृतेः क्रमेण श्रीभागवतश्रवणादेर्नित्यकृत्यत्वमुक्तम् । "कथा इमास्ते कथिता महीयसाम्" इत्यनन्तरं "यस्तूत्तमश्लोकगुणानुवादः प्रस्तूयते नित्यममङ्गलघ्नः । तमेव नित्यं शृणुयादभीक्ष्णं कृष्णेऽमलां भक्तिमभीप्समानः ।।" इति द्वादशोक्तेर्दशमस्कन्धसम्बन्धिस्वप्रेष्ठश्रीकृष्णचरितश्रवणादेर्यथायोग्यं नित्यकृत्यत्वं अभीक्ष्णकृत्यत्वं भावसम्बन्धित्वञ्च । निर्म्माल्यतुलसीगन्धचन्दनमालावसनादिधारणानि भावसम्बन्धीनि । तुलसीकाष्ठमालागोपीचन्दनादितिलकनाममुद्राचरणचिह्नादिधारणानि वैष्णवचिह्नान्यनुकूलानि । तुलसीसेवनपरिक्रमणप्रणामादीन्यप्यनुकूलानि । गवाश्वत्थधात्रीब्राह्मणादिसम्मानानि तद्भावाविरुद्धानि उपकारकाणि । वैष्णवसेवा तूक्तसमस्तलक्षणवती ज्ञेया । उक्तान्येतानि

सर्व्वाणि कर्त्तव्यानि । यथैव पोष्यात् कृष्णादपि सकाशात् तत्पोषकेष्वावर्त्तितदुग्धदधिनवनीतादिषु व्रजेश्वर्य्या अधिकैवापेक्षा, श्रीकृष्णं स्वस्तन्यपयः पिबन्तं बुभुक्षुमप्यपहाय तदीयदुग्धोत्तारणार्थं गतत्वात् । तथैव रागवर्त्मानुगमनरसाभिज्ञभक्तानां पोष्येभ्यः श्रवणकीर्त्तनादिभ्योऽपि तत्पोषकेष्वेतेषु सर्व्वेषु परमैवापेक्षणं नैवानुचितम् । अहग्रहोपासना:न्यास-मुद्रा-द्वारकाध्यान-महीष्यर्च्चनादीन्यपकारकाणि न कर्त्तव्यानि । पुराणान्तरकथाश्रवणादीनि तटस्थानि । अत्र भक्तेः सच्चिदानन्दरूपत्वान्निर्व्विकारत्वेऽपि यदुपादानत्वादिकं तत्खलु दुर्व्वितर्क्यत्वादेव भक्तिशास्त्रेषु "तत्र प्रेमविलासाः स्युर्भावाः स्नेहादयस्तु षट्" इत्यादिषु विलासशब्देन व्यञ्जितं, यथा रसशास्त्रे विभावादिशब्देन अत्र खलु सुखबोधार्थमेव उपदानादिशब्द एव प्रयुक्त इति ज्ञन्तव्यं सद्भिः ॥१४

उन में से दास्य-सख्यादिक स्वाभीष्टभावमय हैं । वे साध्य साधन रूप हैं । गुरु पादाश्रय से लेकर मन्त्र-जप ध्यानादि साध्य हैं, वे धर्म्म समूह साध्य प्रेम के उपादान कारण के हेतु भावसम्बन्धी करके कहे जाते हैं । "प्रत्यह अनन्यचित्त में जप करें" इत्यादि वचन के अनुसार वे सब नित्यकृत्य स्वरूप हैं । "स्वाभीष्ट संसर्गी, कृष्णनामरूप महामन्त्र जप्य है" इस गणोद्देशदीपिका वचन के अनुसार जानना चाहिये । सिद्ध रूप में जिनका अनुसरण किया जाता है उनका भी मन्त्रजप देखने में आता है । उपादानकारण के हेतु भावसम्बन्धी हैं । "हे कृष्ण ! गोपीजन हमारे वल्लभ हो कर सकल इन्द्रियों में निवास करो" इस प्रकार अर्थ स्वरूप, अभीष्ट संसर्गी कृष्णनाम मन्त्र ही महामन्त्र अर्थात् सर्व्वमन्त्र-श्रेष्ट है इस प्रकार अर्थ के वश तादृश अष्टादशाक्षर तथा दशाक्षर मन्त्र ही गणोद्देशदीपिका के तात्पर्य्य हैं । निजभावोचित नाम-रूप-गुण तथा लीलाओं का स्मरण तथा श्रवणादि उपादानकारण

के हेतु भाव सम्बन्धी हैं । क्यों कि "लज्जादिक परित्याग कर संगरहित हो तदर्थक नाम-रूपादि का गान करता हुआ भ्रमण करें" और "भक्तगण निरन्तर आप के चरित्रों का श्रवण-गान-कीर्त्तन तथा स्मरण करते हुए आनन्दानुभव को प्राप्त करते हैं" इत्यादिक वचन के अनुसार भावसम्बन्धी वे सब निरन्तर कर्त्तव्य रूपसे माने जाते हैं। यहाँ रागानुगामार्ग में स्मरणका मुख्यत्व है। स्मरण भी कीर्त्तनांग के अवश्य अधीन है। क्यों कि कीर्त्तनांग वर्त्तमान कलियुग में अधिकृत धर्म्म है । समस्त भक्तिमार्ग में कीर्त्तन का अधिकार है । समस्त शास्त्रों के द्वारा कीर्त्तन की सर्वोत्कर्षता प्रतिपादित की गयी है। "श्रुतियों ने तपस्याचरण के द्वारा प्रेमपूर्ण होकर व्रज में जन्म ग्रहण किया" इस उज्वल-नीलमणि वचन से अनुगम्यमाना श्रुतियों का प्रेमाविर्भाव के लिये तपस्या ही कारण रूप से ज्ञात होती है, परन्तु वर्त्तमान कलियुग में अन्य तपस्या की निन्दा सुनने में आती है। मदर्थक व्रत ही तपस्या है इस प्रकार भगवान् का वचन भी है। अतः एकादशी-जन्माष्टमी आदि व्रत तपस्या रूप निमित्त कारण हैं। वे सब नैमित्तिक कृत्य करके साधारणरूप से परिगणित होने पर भी उनके अकरण में प्रत्यवाय सुनने में आता है, अतः वे सब नित्यकृत्य रूप हैं। एकादशी व्रत के विधिपक्ष में—"एकादशी में उपवास करने पर गोबिन्द स्मरण की सिद्धि होती है" इस प्रकार स्मृतिवचन से उपादान कारण रूप स्मरणांग का लाभ होता है। उस अंश में भावसम्बन्धित्व प्राप्त हो जाता है । निषेधपक्ष में—"मातृहन्ता, पितृहन्ता, गुरुहन्ता होता है" इत्यादि स्कान्दादि पुराण वचनों से एकादशी व्रत का अकरण में गुरुहन्तृत्व आदि नामापराध उपस्थित होता है । "ब्रह्महत्याकारी—सुरापायी—तस्कर—गुरुतल्पगामियों का धर्म्मशास्त्रानुसार निस्तार देखने

में आता है परन्तु एकादशी में अन्नभोजन कारी की निष्कृति नहीं है" इत्यादि विष्णुधर्म्मोत्तर वचन के अनुसार अविनश्वर पापविशेष का लाभ होता है। अतः एकादशी का अत्यावश्यकत्व सिद्ध हो रहा है। इस प्रकार अत्यावश्यक कृत्य ही नित्यकृत्य माने जाते हैं। अधिक क्या कहें—"परम आपद् अथवा परम आनन्द उपस्थिति होने पर भी जो एकादशी का परित्याग नहीं करता है उस की ही वैष्णवी दीक्षा ठहरती है तथा जिस का समस्त कर्म्म विष्णु में अर्पित हो गया है वह वैष्णव करके माना जाता है" इन स्कन्दपुराण के दोनों वचनों के अनुसार एकादशी व्रत ही वैष्णव का लक्षण रूप से निर्द्देश किया जाता है। और भी वैष्णवों के लिये भगवत् अनिवेदित भोजन निषेध है। "वैष्णव यदि एकादशी में प्रमाद के वश भोजन करेगा" यहाँ पर भगवन्निवेदित अन्न का ही भोजन में निषेध जानना चाहिये। कार्त्तिकव्रत तपस्यांश में निमित्तकारण तथा श्रवणकीर्त्तनादि अंशं में उपादानकारण स्वरूप है। श्रीरूपगोस्वामिचरण ने अनेक स्थलों में कार्त्तिकदेवता—कार्त्तिकदेवी—ऊर्ज्जदेवी—ऊर्ज्जेश्वरी इत्यादि निर्द्देश किया है। बिशेष करके कार्त्तिकव्रत वृन्दावनेश्वरी प्रापकत्व रूप से माना गया है। "अम्बरीष—शुक प्रोक्त भागवत का नित्य श्रवण करो" इत्यादि पुराणवचनों के अनुसार क्रम से भागवत श्रवण नित्यकृत्य करके माना गया है। "मैंने तुम्हारे निकट महापुरुषों की समस्त कथा का कीर्त्तन किया है" इस के उपरान्त "नित्य जो अमंगलहारी उत्तमश्लोक भगवान का गुणानुवाद कीर्त्तित होता है उसे श्रीकृष्ण में विशुद्धाभक्ति के इच्छुक निरन्तर श्रवण करें" इस प्रकार द्वादशस्कन्ध बचन के अनुसार दशमस्कन्ध सम्बन्धी निज प्रियतम श्रीकृष्ण चरित्र का श्रवण नित्यकृत्य—निरन्तरकृत्यत्व तथा भावसम्बन्धित्व रूप से सिद्ध हुआ है। तुलसीमाला

गोपीचन्दन—नाममुद्रा—चरणचिन्हादि वैष्णवचिन्ह अनुकूलरूप हैं। तुलसीसेवा—परिक्रमा—प्रणामादि भी अनुकूलरूप हैं। गौ—अश्वत्थ—धात्री—ब्राह्मणादि का सन्मान उस भाव के अविरुद्ध उपकारक हैं। वैष्णवसेवा उक्त समस्त लक्षण विशिष्ट है। ये सब कर्त्तव्य रूप हैं। जिस प्रकार व्रजेश्वरी की पोष्य कृष्ण से पोषक रूप आवर्त्तितदुग्ध—दधी—नवनीतादि में अधिक अपेक्षा देखी गयी है। आप निजस्तन्यपायी- क्षुधातुर श्रीकृष्ण का परित्याग कर उन के दुग्ध उठाने के लिये गयी थीं। ठीक उसी प्रकार राग-मार्ग में अनुगमनकारी रसज्ञ भक्तों की पोष्यरूप श्रवण-कीर्त्तनादि से उस के पोषक इन सब में परम अपेक्षा रहनी चाहिये। अहंग्रह उपासना—न्यासमुद्रा—द्वारकाध्यान—महिषी पूजनादि अपकारक रूप हैं—इन का कर्त्तव्य उचित नहीं है। पुराणान्तर की कथा का श्रवणादि तटस्थ रूप से करना चाहिये। भक्ति सच्चिदानन्द स्वरूप निर्व्विकार वस्तु है। उपादानत्वादि रूप से उस का दुर्व्बोध कथन उसके सुखबोध के लिये जानना चाहिये। भक्तिशास्त्रों में—"स्नेहादि षड्भाव प्रेम के विलास रूप से कहे गये हैं। रसशास्त्रों में जिस प्रकार रस को विभावादि शब्द के द्वारा निर्देशित किया जाता है ठीक उसी प्रकार हम भी यहाँ उस प्रकार की भक्ति को उपादानादि शब्द के द्वारा व्यक्त करते हैं। अतः साधुगण क्षमा करें ॥ १४ ॥

द्वितीयः प्रकाशः

ननु—"न हानिं न ग्लानिं न निजगृहकृत्यं व्यसनितां ।
न घोरं नोद्घूर्णां न किल कदनं वेत्ति किमपि ।

बराङ्गीभिः स्वाङ्गीकृतसुहृदनङ्गाभिरभितो।
हरिर्वृन्दारण्ये परमनिशमुच्चैर्विहरति" ॥ इत्यादिभ्य एव श्रीवृन्दावनेश्वर्य्यादिप्रेमविलासमुग्धस्य श्रीव्रजेन्द्रसूनो र्न क्वापि अन्यत्रावधानप्रसंगसम्भव इत्यवसीयते। तथा सति नाना-दिग्देशवर्तिभिरनन्तरागानुगीयभक्तैः क्रियमाणं परिचर्य्यादिकं केन स्वीकर्त्तव्यम्? विज्ञप्ति स्तवपाठादिकञ्च केन श्रोतव्यम्? तदंशेन परमात्मनैवांशांशिनोरैक्यादितिचेत् समाधिरयं सम्यगाधिरेव तादृशकृष्णानुरागीभक्तानाम्। तर्हि का गतिः? साक्षात् श्रीमदुद्धवोक्तिरेव। साच यथा "मन्त्रेषु मां वाऽपहूय यत्त्वमकुण्ठताखण्डसदात्मबोधः। पृच्छेः प्रभो मुग्ध इवाप्रमत्तस्तन्मे मनोमोहयतीव देव॥" अस्यार्थः—मन्त्रेषु जरासन्धवधराजसूयाद्यर्थगमन-विचारादिषु प्रस्तुतेषु मां वै निश्चितम् उपहूय यत् पृच्छेः उद्धव त्वमत्र किं कर्त्तव्यं तद्ब्रूहि इति पृच्छेः अपृच्छः अकुण्ठतः कालादिना अखण्डः परिपूर्णः सदा सार्व्वदिक एव आत्मनो बोधः सम्बिच्छक्तिर्यस्य स मुग्ध इव यथा अन्यो मुग्धो जनः पृच्छति तथेत्यर्थः तत्तव युगपदेव मौग्ध्यं सार्व्वज्ञञ्च मोहयतीव मोहयतीव। अत्र मुग्ध इव त्वं न तु मुग्धः इति। मोहयतीव न तु मोहयति इति व्याख्यायां सङ्गत्यभावात्। असङ्गतेषु कर्म्माण्यनीहस्य भवोऽभवस्येत्यादिवाक्येषु मध्ये एतद्वाक्यस्योपन्यासो व्यर्थः स्यादित्यतस्तथा न व्याख्येयम्। ततश्च द्वारकालीलायां सत्यपि सार्व्वज्ञ्ये यथा मौग्ध्यं तथैव वृन्दावनलीलायामपि सत्यपि मौग्ध्ये सार्व्वज्ञ्यं तस्याचिन्त्यशक्तिसिद्धमेव मन्तव्यम्। अतएव वर्णितं श्रीलीलाशुकचरणैः "सर्व्वज्ञत्वे च मौग्ध्ये च सार्व्वभौममिदं मह इति ॥१॥

अच्छा? "श्रीकृष्ण, कन्दर्प को अपने सुहृत् रूप से अंगीकार करते हुए गोपसुन्दरियों के साथ बिहार कर रहे हैं। अर्थात् वे

निरन्तर गोपियों के साथ कामक्रीडा में रत हैं। जिसके कारण वे किसी हानि-ग्लानि—निजगृहकृतव्यसन, भय-भ्रम—यातनादि कुछ नहीं जान रहे हैं। क्यों कि आप निरन्तर श्री राधिका के साथ विलासमें मुग्ध हैं।" इत्यादि वचनोंसे श्रीराधिकाप्रेममें मुग्ध श्रीहरि के अन्य विषय में अवधान सम्भव पर नहीं है ऐसा स्थिर हो रहा है। यदि ऐसा ही है तो नानादेशीय असंख्य रागानुगीय भक्तों के द्वारा किये हुए परिचर्य्यादिक का स्वीकार किस प्रकार कर सकते हैं। उन का स्वीकार कौन कर सकता है? भक्तों के बिज्ञप्ति-स्तब पाठादि को कौन सुनता है? यदि कहो कि अंशरूप में विराजमान परमात्मा के द्वारा ही उसके श्रवणादि का समाधान हो सकता है। अंश-अंशि अभेद है। अंश के द्वारा अंशि का कार्य्य सिद्ध होता है।" यह सिद्धान्त उचित नहीं हैं। क्यों कि ऐसा होना समाधि क्रिया रूप से माना जा सकता है। कृष्णानुरागी—भक्त के निकट समाधी तो महान् व्याधि रूप से प्रतीयमान होती है। तब उसकी गति क्या है? कहते हैं—श्री उद्धव जी के वचन ही इस का समाधान हैं। उद्धवजी ने कहा—"प्रभो! आप सर्व्वदा अकुण्ठित अखण्ड आत्मबोध स्वरूप सम्बित् शक्ति के द्वारा परिपूर्ण हैं। आप का ज्ञान किसी भी प्रकार किसी काल में कुण्ठित नहीं होता है। आप सर्व्वदा अप्रमत्त अर्थात् किसी कार्य्य में आसक्त नहीं हैं। अतः मुग्ध न होकर भी जरासन्धवधादि के समय मुग्ध की भाँति मन्त्रणा करते हुए हमसे परामर्श पूछते हैं। आप के युगपद् अर्थात् एक ही समय मौजूद मौग्ध्य—तथा सार्वज्ञ्य हमें मोहित कर रहे हैं। यहाँ आप मुग्ध न होकर मुग्ध की भाँति इस प्रकार व्याख्या संगत है। मोहित करते नहीं हैं परन्तु मोहित की भाँति करते हैं यह व्याख्या संगत नहीं है। "कर्म्मरहित का कर्म्म, जन्मरहित का जन्म" इत्यादि वाक्य में

उक्त वाक्यों का उपन्यास व्यर्थ होता है। अतः शेषोक्तव्याख्या कर्त्तव्य नहीं है। इस लिये—द्वारकालीला में जिस प्रकार सर्व्वज्ञता रहने पर भी मुग्धता है ठीक उसी प्रकार बृन्दावनलीला में मौग्ध्यता रहने पर भी सार्वज्ञता है। भगवान् में युगपद् मौग्ध्यता—सार्व्वज्ञता ये उन की अचिन्त्यशक्ति के द्वारा सिद्ध होती है। श्रीलीलाशुक ने कहा है—"यह सार्व्वभौम ज्योति रूप भगवान श्रीकृष्ण में युगपद् सर्व्वज्ञता तथा मुग्धता मौजूद हैं॥ १॥"

अत्र सर्व्वज्ञात्वं महैश्वर्य्यमेव न तु माधुर्य्यं, माधुर्य्यं खलु तदेव यदैश्वर्य्यविनाभूतकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमिति स्थूलधियो ब्रूवते॥ २॥

"यहाँ सर्व्वज्ञता महान् ऐश्वर्य्य ही हैं, माधुर्य्य नहीं है, माधुर्य्य तो उस को कहते हैं कि ऐश्वर्य्य के बिना केवल मनुष्यलीला में मुग्धता है" इस प्रकार की व्याख्या मोटीबुद्धिवालों की ही जानना चाहिये॥ २॥

माधुर्य्यादिकं निरूप्यते। महैश्वर्य्यस्य द्योतने वाद्योतने च नरलीलत्वानतिक्रमो माधुर्य्यम्। यथा पूतनाप्राणहारित्वेऽपि स्तनचूषणलक्षणनरबाललीलत्वमेव। महाकठोरशकटस्फोठनेऽप्यतिसुकुमारचरणत्रैमासिक्योत्तानशायिबाललीलत्वम् महादीर्घदामाशक्यबन्धत्वेऽपि मातृभीतिवैक्लव्यम। ब्रह्मबलदेवादिमोहनेऽपि सर्व्वज्ञत्वेऽपि बत्सचारणलीलत्वम्। तथा ऐश्वर्य्यसत्व एव तस्याद्योतने दधिपयश्चौर्य्यं गोपस्त्रीलाम्पट्याादिकम्। ऐश्वर्य्यरहितकेवलनरलीलत्वेन मौग्ध्यमेव माधुर्य्यमित्युक्तेः क्रीडाचपलप्राकृतनरबालकेष्वपि मौग्ध्यं माधुर्य्यमिति तथा न निर्व्वाच्यम्।३

अब माधुर्य्यादि का निरूपण करते हैं—जहाँ ऐश्वर्य्य का प्रकाशन अथवा अप्रकाशन होने पर भी मनुष्यलीला का व्यतिक्रम नहीं

है वहाँ माधुर्य्य है। ऐश्वर्य्य मौजूद रहे अथवा नहीं रहे परन्तु जिसमें नरलीला का व्यतिक्रम नहीं घटता है वह माधुर्य्य है। जैसा कि—पूतना के प्राणहरण के समय स्तनपानरूप नरबालक भाव। इधर पूतना के प्राणहरण में चेष्टाशील हैं परन्तु उसी समय स्तनपान के लिये रोदन कर रहे हैं। महान् कठोर शकट के भञ्जन में तत्पर हैं परन्तु अतिकोमल चरणों से मनोहर, त्रमासिक शिशु की भांति उत्तानशायी हैं। महान् दीर्घ रज्जुओं के द्वारा वन्धजाने में असमर्थ हैं परन्तु ठीक उसी समय माता के भय से भयभीत-व्याकुल हैं। ब्रह्मा—बलदेवादि को मोहित करने में चतुर हैं परन्तु वत्सचारण में तत्पर हैं। ऐश्वर्य्य मौजूद है परन्तु उस का अप्रकाश है। उसी अवस्था में दधि-दुग्ध की चोरी तथा गोपस्त्रीजनों में लाम्पट्यता आदिक दिखने में आते हैं। ऐश्वर्य्य से रहित केवल मनुष्यलीला प्राप्त मुग्धता को माधुर्य्य नहीं कहा जाता है। क्यों कि क्रीडा में चपल प्राकृत मनुष्यबालक की जो स्वाभाविक मुग्धता है उस को माधुर्य्य नहीं कहा जाता। ऐश्वर्य्य मौजूद है उस का प्रकाश अथवा अप्रकाश है। प्रभु मनुष्यलीला में आकर प्राकृत मनुष्य की भाँति रोदन कर रहे हैं। वह उन का माधुर्य्यभाव है। ऐश्वर्य्य का स्वीकार नहीं करने पर माधुर्य्य नहीं बन सकता है तथा प्राकृत मनुष्यबालक में भी वह आ सकता है। परन्तु ऐसा तो नही है। प्राकृत नरबालक में माधुर्य्यभाव कहाँ आसकता है? भाव तो भगवान् की वस्तु है। वह अन्य किसी में नहीं है॥ ३॥

ऐश्वर्य्यन्तु नरलीलत्वस्यानपेक्षितत्वे सति ईश्वरत्वाविष्कारः। यथा मातापितरौ प्रति ऐश्वर्य्यं दर्शयित्वा—"एतद्वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे। नान्यथा मद्भावं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते।" इत्युक्तम। यथा अर्ज्जनुं प्रति "पश्य मे रूपमैश्वर्य्यम"

इत्युक्त्वा ऐश्वर्य्यं दर्शितम्। व्रजेऽपि ब्रह्माणं प्रति मञ्जुमहिम-दर्शने परः सहस्रचतुर्भुजत्वादिकमपीति ॥ ४॥

नरलीला की अपेक्षा न करते हुए जो ईश्वरत्व का आविर्भाव है, वह ऐश्वर्य्य है। जैसा कि आपने माता-पिता के निकट चतुर्भुज के प्रकाश द्वारा उन्हें अपने ऐश्वर्य्य को दिखाकर "मनुष्य शरीर के द्वारा मद्विषयक ज्ञान नहीं होता है, पूर्व जन्मादि स्मरण करने के लिये पहले मैं अपने इस चतुर्भुज स्वरूप का दर्शन कराता हूँ" ऐसा उपदेश दिया है तथा अर्ज्जुन को "मेरे ईश्वर सम्बन्धी रूप का दर्शन करो" ऐसा कह कर अपने ऐश्वर्य्य का दर्शन कराया। व्रज में मञ्जुमहिमा प्रदर्शन के समय भी ब्रह्मा के हजारों चतुर्भुज स्वरूप का अवलोकन कराया ॥ ४॥

अथ भक्तिनिष्ठमैश्वर्य्यज्ञानम्। ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धाने सति हृत्कम्पजनकसम्भ्रमेण स्वीयभावस्यातिशैथिल्यं यत् प्रतिपादयति तदैश्वर्य्यज्ञानम्। अतएव "युवां न नः सुतौ साक्षात् प्रधान-पुरुषेश्वरौ इत्यादि वसुदेवोक्तेः "सखेतिमत्वा प्रसभं यदुक्तम्" इत्यर्ज्जुनोक्तेश्च ईश्वरोऽयमित्यनुसन्धानेऽपि हृत्कम्पजनकसम्भ्रम-गन्धस्यानुद्गमात् स्वीयभावस्यातिस्थैर्य्यमेव यदुत्पादयति तन्मा-धुर्य्यज्ञानम्। यथा—"बन्दिनस्तमुपदेवगणा ये गीतवाद्यावलिभिः परिवव्रुः" इति "वन्द्यमानचरणः पथि वृद्धैः" इति च युगल-गीतोक्तेः गोष्ठं प्रति गवानयनसमये ब्रह्मेन्द्रनारदादिभिः कृतस्य कृष्णस्तुतिगीतवाद्यपूजोपहारप्रदानपूर्वकचरणबन्दनस्य दृष्टत्वेऽपि श्रीदाम-सुबलादीनां सख्यभावस्याशैथिल्यम्। तस्य तस्य श्रुत-त्वेऽपि व्रजाबलानां मधुरभावस्यशैथिल्यम्। तथैव व्रजराजकृत-तदाश्वासनवाक्यैर्व्रजेश्वर्य्या अपि नास्ति वात्सल्यशैथिल्यगन्धोऽपि प्रत्युत धन्यैवाहं यस्यायं मम पुत्रः परमेश्वर इति मनस्यामिनन्दने पुत्रभावस्य दार्ढ्यमेव। यथा प्राकृत्या अपि मातुः पुत्रस्य पृथ्वी-

श्वरत्वे सति तत्पुत्रभावः स्फीत एवावभाति। एवं धन्या एव वयं येषां सखा च परमेश्वर इति यासां प्रेयान् परमेश्वर इति सखानां प्रेयसीनाञ्च स्वस्वभावदाढ्यमेव ज्ञेयम्। किञ्च संयोगे सति ऐश्वर्य्यज्ञानं न सम्यगवभासते, संयोगस्य शैत्यात् चन्द्रातपतुल्यत्वात् विरहे त्वैश्वर्य्यज्ञानं सम्यगवभासते विरहस्यौष्ण्यात् सूर्य्यातपतुल्यत्वात्। तदपि हृत्कम्पसम्भ्रमाद्याभावान्नैश्वर्य्यज्ञानम्। यदुक्तम् 'मृगयुरिव कपीन्द्रं विव्यधे लुब्धधर्म्मा स्त्रियमकृत विरूपां स्त्रीजितः कामयानाम्। बलिमपि बलिमत्त्वा वेष्टयद्धाङ्क्षवद्य स्तदलमसितसख्यैर्दुस्त्यजस्तत्कथार्थः' इति। अत्र व्रजौकसां गोबर्द्धनधारणात् पूर्व्वं कृष्ण ईश्वर इति ज्ञानं नासीत्। गोबर्द्धनधारण वरुणलोकगमनानन्तरं तु कृष्णोऽयं ईश्वर एवेति ज्ञानेऽप्युक्तप्रकारेण-शुद्धं माधुर्य्यज्ञानमेव पूर्णम्। वरुणवाक्येनोद्धववाक्येन च साक्षादीश्वरज्ञानेऽपि "युवां न नः सुताविति वसुदेववाक्यवत् व्रजेश्वरस्य "न मे पुत्रः कृष्ण" इति मनस्यापि मनागपि नोक्तिः श्रूयते इति तस्माद् व्रजस्थानां सर्व्वथैव शुद्धमेव माधुर्य्यज्ञानं पूर्णं पुरस्थानां तु ऐश्वर्य्यज्ञानमिश्रं माधुर्य्यज्ञानं पूर्णम्॥ ५॥

अब भक्तनिष्ठ ऐश्वर्य्यज्ञान को दिखलाते हैं। ये ईश्वर हैं, इस प्रकार बुद्धि रहने पर जिसके द्वारा हृदयकम्पजनक सम्भ्रम के साथ हृदयवर्ती भाव की शिथिलता होती है उसको ऐश्वर्य्यज्ञान कहते हैं। "तुम दोनों हमारे पुत्र नहीं हो परन्तु साक्षात् ईश्वर प्रधानपुरुष हो" इत्यादि प्रकार की वसुदेव उक्ति देखने में आती है। "मैंने तुमको सखा जान हठात् जो कुछ कहा है"—यह अर्जुन का वचन भी है। ईश्वर ये हैं इस प्रकार बुद्धि होने पर भी यदि हृदय कम्पकारी सम्भ्रम का उदय नहीं होता है वह माधुर्य्यभाव है। इसमें भक्त हृदय-गत भाव शैथिल्य न होकर स्थिरता को प्राप्त होता है। "गन्धर्व्वादि उपदेवगण वाद्य-गीत-

पुष्पादि उपहार के द्वारा उनकी उपासना करते रहते हैं।" "मार्ग में ब्रह्मादि वृद्धगण इन के चरणों की वन्दना करते हैं" इन दोनों बचन के अनुसार अरण्य से गोष्ठ में प्रत्यागमन के समय ब्रह्मादि देवताओं के द्वारा श्रीकृष्ण को स्तब, गीत-वाद्यादि के साथ उपहार प्रदान, चरणवन्दनादि देखकर श्रीदाम-सुबलादि गोपबालकों के सख्यभाव का अशैथिल्य तथा उन सब बातों का श्रवण करके ब्रजरमणियों के मधुरभाव का अशैथिल्य देखने में आता है। उस प्रकार ब्रजराज के द्वारा आश्वासवाक्य बोले जाने पर भी ब्रजेश्वरी यशोदा के वात्सल्यभाव का गन्धमात्र शैथिल्य नहीं देखा गया है। वस्तुतः 'मैं धन्या हूँ, जिस से यह मेरा पुत्र परमेश्वर है" इस प्रकार आत्मश्लाघा के उदय से पुत्रभाव की दृढ़ता हो जाती है। जैसा कि प्राकृत में—पुत्र के राजा होने पर माता का पुत्रभाव शैथिल्य न होकर दृढ़ होता है ठीक उसी प्रकार ऐश्वर्यादि देख कर अथवा सुनकर ब्रजेश्वरी का पुत्रभाव दृढ़ होजाता है। हम सब धन्य हैं जिनके सखा परमेश्वर है।" इस प्रकार सखाओं का 'प्राणबल्लभ परमेश्वर हैं' इस प्रकार प्रेयसियों का भाव अपने-अपने भावानुसार दृढ़ता को प्राप्त होता है। और भी, संयोग के समय ऐश्वर्य्यज्ञान सम्यक् प्रकार से स्फुरित नहीं होता है। क्योंकि संयोग चन्द्रकिरण की भाँति शीतल वस्तु है। विरह के समय वह ऐश्वर्य्य सम्यक रूप से स्फुरित हो जाता है। और भी विरह के समय जो ऐश्वर्य्य का स्फुरण होता है उसे ऐश्वर्य्यज्ञान करके स्वीकार नहीं किया जाता है। क्योंकि उस अवस्था में हृदय-कम्पकारी सम्भ्रम अथवा आदरादि का अभाव रहता है। "हे भ्रमर ! श्रीकृष्ण के पूर्व्व-पूर्व्व जन्म की कथाओं का स्मरण करके हम अत्यन्त भीता हो रही हैं। उनकी क्रूरता का क्या वर्णन करेंगी। उनने रामावतार में व्याध की भाँति बालि को बध

किया था तथा स्त्री परवश होकर कामुकी सूर्पणखा के नाक-कान का छेदन भी किया। बामन अवतार में बलि के पूजोपहार लेकर कौआ की भाँति उसको बाँधा था। अतः उस कृष्णवर्ण पुरुष में सख्यता प्रयोजन नहीं है। तौ भी उनकी कथाओं की जो आलोचना करती हूँ उस का कारण यह है कि आलोचना के बिना नहीं रह सकती हूँ।" इन बचनों में श्रीराधिका का कोई सम्भ्रम अथवा आदर गौरव नहीं देखने में आता। गोबर्द्धनधारण के पहले ब्रजवासियों का कृष्ण में ईश्वरज्ञान नहीं रहा। गोवर्द्धनधारण तथा वरुणलोक गमन के उपरान्त उन की श्रीकृष्ण में ईश्वरबुद्धि हुई। परन्तु उस बुद्धि को ऐश्वर्य्यज्ञान नहीं कहा जा सकता है। वरुण के बचन तथा उद्धवजी के वचन से श्रीकृष्ण को साक्षात् ईश्वर करके जानने पर भी वसुदेव की भाँति ब्रजराज का पुत्रभाव ऐश्वर्यज्ञान से दूर नहीं हुआ। 'तुम हमारे पुत्र नहीं हो" इस प्रकार वसुदेव का वचन देखने में आता है। परन्तु ब्रजराज ने 'श्रीकृष्ण मेरा पुत्र नहीं है" इस प्रकार कभी नहीं कहा। अतः ब्रजवासियों का सर्व्वप्रकार से शुद्ध माधुर्य्यज्ञान तथा पुरवासियों का ऐश्वर्य्यज्ञान मिश्रित माधुर्य्यज्ञान पूर्णरूपतः सिद्ध हुआ ॥५॥

ननु पुरे बसुदेबनन्दनः कृष्णोऽयमहमीश्वर एव इति नरलीलत्वेऽपि जानात्येव यथा तथैब नन्दनन्दनः कृष्णः स्वमीश्वरत्वेन ब्रजे जानाति न बा? यदि जानाति तदा दामबन्धनादिलीलायां मातृभीतिहेतुकाश्रुपातादिकं न धटते। तदादिकमनुकरणमेबेति व्याख्या तु मन्दमतीनामेब न त्वभिज्ञभक्तानाम। तथा व्याख्यानस्याभिज्ञसम्मतत्बे "गोप्याददे त्वयि कृतागसि दाम यावद् या ते दशाश्रुकलिलाञ्जनसंभ्रमाक्षम्। बक्त्रं निनीय भयभावनया स्थितस्य सा मां बिमोहयति भीरपि यद्बिभेति "इत्युक्तबत्यां कुन्त्यां मोहो नैब बर्ण्येत। तथाहि भीरपि यद्बिभेति इत्युक्तैश्चात्र कुन्त्या

अत्रैश्वर्य्यज्ञानं व्यक्तीभूतं भयभावनया स्थितस्य इत्यन्तर्भयस्य च तथा सत्यत्वमेवाऽभिमतम्। अनुकरणमात्रत्वे ज्ञाते तस्या मोहो न सम्भवेदिति ज्ञेयम। यदि च स्वमीश्वरत्वेन न जानाति तदा तस्य नित्यज्ञानावरणं केन कृतमिति? अत्रोच्यते—यथा संसारबन्धे निपात्य दुःखमेवानुभावयितुं मायावृत्तिरविद्या जीवानां ज्ञानमावृणोति, यथा च महामधुर—श्रीकृष्णलीलासुखमनुभावयितु गुणातीतानां श्रीकृष्णपरिवाराणां व्रजेश्वर्य्यादीनां ज्ञानं चिच्छक्तिवृत्तिर्योगमायैवावृणोति, तथैव श्रीकृष्णमानन्दस्वरूपमप्यानन्दातिशयमनुभावयितुं चिच्छक्तिसारवृत्तिः प्रेमैव तस्य ज्ञानमावृणोति। प्रेम्णस्तु तत्स्वरूपशक्तित्वात् तेन तस्य व्याप्तेर्न दोषः। यथा ह्यविद्या स्वकृत्या ममतया जीवं दुःखयितुमेव बन्धनाति, यथा दण्डनीयजनस्य गात्रबन्धनं रज्जुनिगडादिना माननीयजनस्यापि गात्रबन्धनमनर्घसुगन्धसूक्ष्मकञ्चुकोष्णीषादिना, इत्यविद्याधीनो जीवो दुःखी प्रेमाधीनः कृष्णोऽति सुखी। कृष्णस्य प्रेमावरणरूप। सुखविशेषभोग एव मन्तव्यः, यथा भृङ्गस्य कमलकोषावरणरूपः। अतएवोक्तं "नापैषि नाथ हृदयाम्बुरुहात् स्वपुंसामिति प्रणयरसनया धृताङ्घ्रिपद्म इति च। किञ्च यथैवाविद्यया स्वतारतम्येन ज्ञानावरणतारतम्यात् जीवस्य पंचविधक्लेशतारतम्यं विधीयते, तथैव प्रेम्नापि स्वतारतम्येन ज्ञानैश्वर्य्याद्यावरणतारतम्यात् स्वविषयाश्रययोरनन्तप्रकारं सुखतारतम्यं विधीयते इति। तत्र श्रीयशोदानिष्ठः केवलप्रेमा स्वविषयाश्रयौ ममता रसनया निबध्य परस्परवशीभूतौ विधाय ज्ञानैश्वर्य्यादिकमावृत्य यथाधिकं सुखयति न तथा देवक्यादिनिष्ठो ज्ञानैश्वर्य्यमिश्र इति। तस्मात् तासां व्रजेश्वर्य्यादीनां सन्निधौ तद्वात्सल्यादिप्रेममुग्धः श्रीकृष्णः स्वमीश्वरत्वेन नैव जानाति। यत्तु नानादानवदावानलाद्युत्पातागमकाले तस्य सार्व्वज्ञ्यं दृष्टं तत्खलु तत्तत्प्रेमिपरिजनपालनप्रयोज-

निकया लीलाशक्त्यैव स्फोरितं ज्ञेयम् । किंच मौग्ध्यसमयेऽपि तस्य साधकभक्तपरिचर्य्यादिग्रहणे सार्व्वज्ञ्यमचिन्त्यशक्तिसिद्धम् इति प्राक्प्रतिपादितम । तदेवं बिधिमार्गरागमार्गयोर्बिवेक ऐश्वर्य्यमाधुर्य्ययोर्बिवेक ऐश्वर्य्यज्ञानमाधुर्य्यज्ञानयोर्बिवेकश्च दर्शितः । स्वकीयापरकीयात्वयोर्ब्बिवेकस्तु उज्ज्वलनीलमणिव्याख्यायां बिस्तारित एव । तत्र बिधिमार्गेण राधाकृष्णयोर्भजने महाबैकुण्ठस्थगोलोके खल्वबिबिक्तस्वकीयापरकीयाभावमैश्वर्य्यज्ञानं प्राप्नोति । मधुरभावलोभित्वे सति बिधिमार्गेण भजने द्वारकायां श्रीराधासत्यभामापरिकरत्वेन स्वकीयाभावमैश्वर्य्यज्ञानमिश्रमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति । रागमार्गेण भजने ब्रजभूमौ श्रीराधापरिकरत्वेन परकीयाभावं शुद्धमाधुर्य्यज्ञानं प्राप्नोति । यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्णस्य स्वरूपभूता ल्हादिनी शक्तिः तस्या अपि श्रीकृष्णः स्वीय एव, तदपि तयोर्लीलासहितयोरेवोपास्यत्वं न तु लीलारहितयो; लीलायान्तु तयो ब्रजभूमौ काप्यार्षशास्त्रे दाम्पत्यं न प्रतिपादितमिति श्रीराधा हि प्रकटाप्रकटप्रकाशयोः परकीयैव इति सर्व्वार्थनिष्कर्षसंक्षेपः ॥ ६ ॥

अच्छा, जिस प्रकार वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण द्वारकापुरी में नरलीला करते हुए भी "हम ईश्वर हैं" इस प्रकार अपने को जानते थे क्या उस प्रकार नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ब्रज में अपने को ईश्वर करके जानते थे, किम्बा नहीं ? यदि जानते थे ऐसा कहोगे तो दामबन्धनादि लीला में मातृ भय हेतुक अश्रुपातादि नहीं घट सकता है । वह सब अनुकरणमात्र है इस प्रकार की व्याख्या निर्वोध लोग ही किया करते हैं । अभिज्ञ भक्तों की इस प्रकार की व्याख्या अनुचित होती है । यदि इस प्रकार की व्याख्या अभिज्ञ सम्मत है ऐसा कहोगे तो "हे कृष्ण ! आपने जब दधि का बर्तन

तोड़ा था उस समय माता यशोदा आपको बाँधने के लिये रस्सी लेकर तत्परा हुई। उस समय माता के भय से आपकी जो अवस्था हुई थी वह अवस्था मेरे स्मरण पथ में आकर विमोहित कर रही है। उस समय माता को देख कर आपके दोनों नेत्र भय से व्याकुल तथा काजर से मिश्रित अश्रु धारा से व्याप्त हो गये। भय तो आपसे भीत होकर भागता है। आप इस प्रकार होते हुए भी यशोदा के भय से भीत होकर काँपते थे।" इस प्रकार कुन्तीदेवी के वचन में मोहरूप वर्णन नहीं होता। "जिन के भय से भयभीत होकर" इस वचन से कुन्ती का ऐश्वर्य्यज्ञान स्पष्ट है। फिर "उस भय भावना से भीत होकर" इस वचन से कृष्ण के आन्तरिक भय सत्य है ऐसा कुन्ती का अभिमत है। यदि "यह अनुकरण मात्र है" ऐसा कुन्ती का बोध होता तो उसकी मोहसम्भावना नहीं होती। यदि कहो कि ब्रज में श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर करके नही जानते थे तो नित्यज्ञानानन्दघन उन के नित्यज्ञान का आवरण किसने किया? उस का उत्तर यह है—जिस प्रकार संसारबन्धन में डालकर दुःखानुभव कराने के लिये मायावृत्ति अविद्या जीवों के ज्ञान को आवरित करती है, उसी प्रकार महामधुर श्रीकृष्णलीला का सुख आस्वादन कराने के लिये उनके गुणातीत परिवार ब्रजेश्वरी आदि के ज्ञान को चिच्छक्तिवृत्ति योगमाया आवृत कर देती है, तथा आनन्द स्वरूप श्रीकृष्ण को भी अतिशय आनन्द का अनुभव कराने के लिये ही उन के ज्ञान को भी उसी योगमाया चिच्छक्ति की सारवृत्ति प्रेम ही आवृत कर देती है। प्रेम उन की स्वरूपशक्ति की ही वृत्ति है, अतः उस के द्वारा उन की व्याप्ति कोई दोषावह बात नहीं है। जिस प्रकार अविद्या निजवृत्ति ममता के द्वारा जीव को दुःख देने के लिये बाँधती है, जिस प्रकार दण्डनीय व्यक्ति के शरीर का बन्धन रज्जु अथवा साँकल के द्वारा

किया जाता है, तथा जैसा कि माननीय व्यक्ति के शरीरबन्धन सुगन्ध-सूक्ष्म कंचुक अथवा पगड़ी के द्वारा देखा जाता है। उभय प्रकार के अविद्याधीन जीव दुःखी तथा प्रेमाधीन श्रीकृष्ण अति सुखी हैं। प्रेमाधीन श्रीकृष्ण के उस प्रकार का बन्धन देखने में आता है परन्तु वह बन्धन दुःख रूप न होकर परम सुख का प्रदान करता है। श्रीकृष्ण को प्रेम के द्वारा आवृत्त हो जाना सुख-विशेष भोग के लिये है, ऐसा जानना चाहिये। जैसा कि भ्रमर का कमलकोष में आवरण होता है ठीक उसी प्रकार है। अतः शास्त्र में कहा है—"हे नाथ आप भक्तों के हृदयकमल से बाहिर नहीं होते हैं" "जीव प्रणयरज्जु के द्वारा आप के पाद पद्म को बाँध लेता है।" और भी जैसा कि अविद्या निजतारतम्य अर्थात् अल्प-अधिकादिक भेद के द्वारा जीव के ज्ञानावरण को अल्प-अधिक तारतम्य से करती है जिससे पाँच प्रकार के क्लेश उत्पन्न होते हैं ठीक उसी प्रकार प्रेम भी अपने तारतम्य के अनुसार ज्ञान-ऐश्वरादि के आवरण को तारतम्य रूप से करता है। जिससे निज विषय कृष्ण एवं निज आश्रय गोपी आदिकों को अनन्त प्रकार से सुख भोग कराता रहता है। उन में से यशोदादि व्रजपरिकरनिष्ठ विशुद्ध प्रेम जिस प्रकार अपने विषय तया आश्रय को ममतारज्जु के द्वारा बाँधकर परस्पर को परस्पर के अधीन कर दोनों के ज्ञान-ऐश्वर्य्य को आवरित करके अत्यधिक सुख प्रदान करता है, ज्ञान-ऐश्वर्य्य से मिश्रित देवकी आदि पुरवासीनिष्ठ का प्रेम उस प्रकार सुख प्रदान नहीं करता है। अतः उन व्रजेश्वरी आदिक के निकट उनके वात्सल्यादि प्रेम से मुग्ध श्रीकृष्ण अपने को ईश्वर करके नहीं जानते हैं। दानव-दावानलादि उत्पात के समय श्रीकृष्ण की जो सर्व्वज्ञता देखने में आती है वह निश्चय उन सब प्रेमीपरिजन के पालन प्रयोजन-रूपिणी लीलाशक्ति के

द्वारा उद्भावित हुई है, ऐसा जानना चाहिये । और भी, मुग्ध हो जाने के समय में भी श्रीकृष्ण के साधकभक्तों के परिचर्य्यादि ग्रहण में जो सर्व्वज्ञता देखने में आती है वह अचिन्त्यशक्ति के द्वारा समाधित होती है, यह पहिले प्रतिपादित किया गया है। इस प्रकार विधिमार्ग-रागमार्ग का विवेक, ऐश्वर्य्य-माधुर्य्य का विवेक, ऐश्वर्य्यज्ञान-माधुर्य्यज्ञान का विवेक दिखलाया गया है। स्वकीया-परकीया का विवेक उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ की व्याख्या में विस्तारित किया गया है। अब हम यह कहते हैं कि—विधिमार्ग के द्वारा राधाकृष्ण का भजन करने पर महावैकुण्ठस्थ गोलोक में स्वकीया-परकीया भेद भाव से वर्जित ऐश्वर्य्यज्ञान की प्राप्ति होती है। और यदि मधुरभाव में लोभ है अथच विधिमार्ग से भजन किया जाता है तो द्वारका में राधा-सत्यभामा के ऐक्य के कारण सत्यभामापरिकर रूप से ऐश्वर्य्यज्ञानमिश्रित माधुर्य्यज्ञान का लाभ होता है। केवल रागमार्ग से भजन करने पर ब्रज में श्रीराधिकापरिवार रूप में शुद्धमाधुर्य्यज्ञान की प्राप्ति होती है। यद्यपि श्रीराधिका श्रीकृष्ण की स्वरूपभूता ह्लादिनी शक्तिरूपा हैं तथा श्रीकृष्ण राधिका के स्वकीय हैं तो भी दोनों की लीला के साथ उपासना होती है कभी लीला रहित रूप में उपासना नहीं है। लीलावस्था में ब्रजभूमि में किसी भी आर्षशास्त्र में दोनों का दाम्पत्य प्रतिपादन नहीं किया गया है। अतः श्रीराधिका के प्रकट-अप्रकट दोनों प्रकाश में परकीयत्व है यह निश्चित है ॥६॥

अथ रागानुगाभक्तिमज्जनस्यानर्थनिवृत्तिनिष्ठारुच्याशक्त्यनन्तरं प्रेमभूमिकारूढ़स्य साक्षात्स्वाभीष्टप्राप्तिप्रकारः प्रदर्श्यते। यथोज्ज्वलनीलमणौ "तद्भावबद्धरागा ये जनास्ते साधने रताः। तद्योग्यमनुरागौघं प्राप्योत्कण्ठानुसारतः। ता एकशोऽथवा द्वित्राः काले काले ब्रजेऽभवन्" इति। अनुरागौघं रागानुगाभजनौत्कण्ठ्यं

न त्वनुरागस्थायिनं साधकदेहेऽनुरागोत्पत्त्यसम्भवात्। व्रजेऽभवन्निति अवतारसमये नित्यप्रियाद्या यथा आविर्भवन्ति तथैव गोपिकागर्भे साधनसिद्धा अपि आविर्भवन्ति। ततश्च नित्यसिद्धादिगोपीनां महाभाववतीनां सङ्गमहिम्ना दर्शन-श्रवण-कीर्त्तनादिभिः स्नेह-मान-प्रणय-रागानुरागमहाभावा अपि तत्र गोपिकादेहे उत्पाद्यन्ते। पूर्व्वजन्मनि साधकदेहे तेषामुत्पत्त्यसम्भवात्। अत एव व्रजे कृष्णप्रेयसीनामसाधारणानि। यदुक्तम्—"गोपीनां परमानन्द आसीद्गोविन्ददर्शने। क्षणं युगशतमिव यासां येन विना भवेदिति" "त्रुटि युगायते त्वामपश्यतामि" त्यादि च। क्षणस्य युगशतायमानत्वं महाभावलक्षणम्। ननु प्रेमभूमिकाधिरूढस्य साधकस्य देहभङ्गे सत्येवाप्रकटप्रकाशे गोपीगर्भाज्जन्मना बिना एव गोपिकादेहप्राप्तौ सत्यां तत्रैव नित्यसिद्धगोपिकासङ्गोद्भूतानां स्नेहादीनां भावानां प्राप्तिः स्यादित्येवं किं न ब्रूवे? नैवम्। गोपीगर्भाज्जन्मना बिना इयं सखी कस्याः पुत्री कस्य वधूः कस्य स्त्री इत्यादिनरलीलताव्यवहारो न सिद्ध्येत्। तर्हि प्रकट प्रकाश एव जन्मास्तीति चेन्नैवं, प्रपञ्चागोचरस्य वृन्दावनीयप्रकाशस्य साधकानां प्रापञ्चिकलोकानाञ्च प्रवेशादर्शनेन सिद्धानामेव प्रवेशदर्शनेन ज्ञापितात् केवलसिद्धभूमित्वात् स्नेहादयो भावास्तत्र स्वस्वसाधनैरपि तूर्णं न फलन्ति, अतो योगमायया जातप्रेमाणो भक्तास्ते प्रपञ्चगोचरे वृन्दावनप्रकाशे एव श्रीकृष्णावतारसमये नीयन्ते। तत्रोत्पत्त्यनन्तरं श्रीकृष्णाङ्गसङ्गात् पूर्व्वमेव तत्तद्भावसिद्ध्यर्थं तत्र साधकभक्तानां रुक्मिप्रभृतीनां सिद्धभक्तानाञ्च प्रवेशदर्शनेनैवानुभूयते साधकभूमित्वं सिद्धभूमित्वञ्च। ननु तर्हि तावन्तं कालं तैः परमोत्कण्ठभक्तैः क्व स्थातव्यम्? तत्रोच्यते। साधकदेहभङ्गसमये एव तस्मै प्रेमवते भक्ताय चिरसमयविधृतसाक्षात्सेवाभिलाषमहोत्कण्ठाय भगवता कृपयैव सपार-

करस्य स्वस्य दर्शनं तदभिलषणीयसेवादिकं चालब्धस्नेहादिप्रेम-
भेदापि सुकृढीयते एव यथा नारदायैव चिदानन्दमयो गोपिका-
तनुश्च दीयते । सैव तनुर्योगमायया बृन्दाबनीयप्रकटप्रकाशे
कृष्णपरिवारप्रादुर्भावसमये गोपीगर्भादुद्भाव्यते । नात्र काल-
बिलम्बगन्धोऽपि। प्रकटलीलाया अपि विच्छेदाभाबात्। यस्मि-
न्नेब ब्रह्माण्डे तदानीं बृन्दाबनीयलीलानां प्राकट्यं तत्रैवास्यामेव
ब्रजभूमौ, अतः साधकप्रेमिभक्तदेहभङ्गसमकालेऽपि सपरिकर-
श्रीकृष्णप्रादुर्भावः सदैवास्ति इति भो भो महानुरागिसोत्कण्ठ-
भक्ता माभैष्ट सुस्थिरास्तिष्ठत स्वस्त्येबास्तु भवद्भ्य इति ॥ ७ ॥

अनन्तर, रागानुगाभक्ति वाले भक्त के अनर्थनिवृत्ति-निष्ठा-रुचि-
आसक्ति के पश्चात् प्रेमभूमिका में आरोहण हो जाने पर साक्षात्
रूप से जिस प्रकार उसे निज-अभीष्ट की प्राप्ति होती है उस का
वर्णन करते हैं। उज्ज्वलनीलमणि ग्रन्थ में कहा गया है—"जो
ब्रजभाव में वद्धराग होकर रागमार्ग के अनुसार भजन परायण
हैं वे तद्योग्य अनुराग समूह को प्राप्त होकर उत्कण्ठा के अनु-
सार अकेला किम्वा दो-तीन मिल कर यथा समय ब्रजभूमि में
गोपी होकर जन्म लेते हैं।" यहाँ अनुराग समूह का अर्थ—
रागानुगाभजनविषयिणी उत्कण्ठा परम्परा है। अनुराग शब्द से
स्थायिभाव रूप अनुराग नहीं है। क्यों कि साधक शरीर में उस
का अत्यन्त अभाव है। "ब्रजभूमि में गोपी रूप से जन्म लाभ"
बोलने पर अवतार के समय नित्यसिद्धा गोपियों की भाँति गोपी
गर्भ में आविर्भाव है। पश्चात् महाभाववती नित्यसिद्धगोपियों
की सङ्गमहिमा से दर्शन-श्रवण-कीर्त्तनादि के द्वारा उस गोपिका-
देह में स्नेह-मान-प्रणय-राग-अनुराग-महाभाव उत्पन्न होते हैं।
गोपीजन्म के पहले साधक शरीर में प्रेम के अतिरिक्त उनकी
उत्पत्ति असम्भव है। अतः ब्रज में श्रीकृष्णप्रेयसियों में सब

असाधारण लक्षण मौजूद हैं, ऐसा जानना चाहिये। श्रीभागवत में कहा है-"गोबिन्द दर्शन से गोपियों का परमानन्द होता है और अदर्शन में एक-एक क्षण उन के लिये सौ-सौ युग की भांति बोध होता है।" "आपको न देखकर एक ही मुहूर्त्त युग की भांति हो जाता है।" क्षणकाल का युगशत की भांति प्रतीत हो जाना यह महाभाव का लक्षण है। अच्छा! "प्रेमभूमिका में आरूढ़ साधक के शरीर नाश के उपरान्त गोपीगर्भ में जन्म के बिना ही अप्रकट प्रकाश में गोपीदेह की प्राप्ति होवे। उस गोपीदेह में नित्यसिद्ध गोपियों के प्रभाव से स्नेहादि भावों की प्राप्ति हो सकती है" ऐसा सिद्धान्त क्यों नहीं करते हो? उस के उत्तर में कहते हैं—तुम इस प्रकार नहीं कह सकते। क्यों कि गोपीगर्भ में जन्म के बिना "वह किस की कन्या, किस की वधू, किस की पत्नी" इत्यादि नरलीला का व्यवहार सिद्ध नहीं हो सकता है। अच्छा! अप्रकटप्रकाश में भी गोपीगर्भ में जन्म हो सकता है यदि यों कहें तो यह भी सङ्गत नहीं है। क्योंकि प्रपञ्च के अगोचर बृन्दावन के प्रकाश ही में अप्रकटलीलास्थल है। साधकों का किम्वा प्रापञ्चिकलोगों का उस में प्रवेश देखने में नहीं आता। केवल सिद्धगण वहाँ प्रवेश करते हैं तथा उस को सिद्ध-भूमि भी कहते हैं। वहाँ साधन करने पर भी स्नेहादि भाव समूह शीघ्र लाभ नहीं होते। अतः जातप्रेम भक्त अर्थात् जिन को प्रेम उत्पन्न हो गया है ऐसे भक्तगण ही योगमाया के द्वारा प्रपञ्च-गोचर बृन्दाबन प्रकाशकाल में श्रीकृष्णावतार के साथ लिये जाते हैं। इस प्रकार वहाँ उत्पत्ति के पश्चात् तथा श्रीकृष्ण के अङ्गसङ्ग के पहले वे सब भाव सिद्ध होते हैं। उस भावसिद्ध के लिये कर्म्मी आदिक साधकभक्तों का तथा सिद्धभक्तों का प्रवेश देखने में आता है। अतः प्रकटप्रकाश को साधनभूमि रूप तथा

अप्रकटप्रकाश को सिद्धभूमि रूप में अनुमान किया जाता है। अच्छा! प्रकट प्रकाश तो कदाचित् ही होता है। तब तक अनुरागीभक्त कहाँ ठहरता है? उत्तर में कहते हैं—प्रेमप्राप्त, बहुकाल से साक्षात् सेवा प्राप्ति करने के लिये महान् उत्कण्ठित उस भक्त के शरीर भङ्ग हो जाने पर भगवान अपनी कृपा के द्वारा परिवारवर्ग के साथ अपने दर्शन, तथा उसकी अभिलाषणीय सेवादि को एक बार प्रदान करते हैं। किन्तु उस समय स्नेहादिभाव का उदय नहीं होता। देवर्षि नारद जी उस का दृष्टान्त हैं। उस समय भगवान उस भक्त को गोपीदेह भी दान करते हैं। जिस ब्रह्माण्ड में उस समय वृन्दावनीय लीलाओं का प्राकट्य हो रहा है उसी ब्रजभूमि में किम्वा यहाँ की ब्रजभूमि में श्रीकृष्ण किम्वा उनके परिवारों के प्रादुर्भाव के समय गोपीगर्भ से वह प्रादुर्भावित होता है। योगमाया के द्वारा उस का समाधान होता है। अतः साधक-प्रेमीभक्त के देहभङ्ग समय में भी सपरिकर श्रीकृष्ण का प्रादुर्भाव मौजूद है ऐसा जानना चाहिये। क्योंकि उन के जन्मादिक समस्त लीला नित्य हैं अर्थात् अभी भी वह किसी ब्रह्माण्ड में हो रही हैं। अतः महानुरागी उत्कण्ठित भक्तगण! भय मत कीजिये। धैर्य्य रखिये। आप सब का मङ्गल ही होगा॥ ७॥

"लीलाबिलासिने भक्तिमञ्जरीलोलुपालिने।
मौग्ध्यसार्व्वज्ञ्यनिलये गोकुलानन्द ते नमः॥
ददामि बुद्धियोगं तं येन मामुपयान्ति ते।
इत्यवोचः प्रभो तस्मादेतदेवाहमर्थये॥
गोपीकुचालंकृतस्य तव गोपेन्द्रनन्दन!।
दास्यं यथा भवेदेवं बुद्धियोगं प्रयच्छ मे॥

ये तु रागानुगा भक्तिः सर्व्वथैव सर्व्वदैव शास्त्रबिधिमतिक्रान्ता एव इति ब्रूवते "ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः"

इति "विधिहीनमसृष्टान्नम" इत्यादि गीतोक्तो गर्हामर्हन्तो मुहुरुत्पातमनुभूतवन्तोऽनुभवन्तोऽनुभविष्यन्ति चेत्यलमातिविस्तरेण ।

हन्त रागानुगावर्त्म दुर्दर्शं विबुधैरपि ।
परिचिन्वन्तु सुधियो भक्ताश्चन्द्रिकयानया ॥ ८ ॥

इति महामहोपाध्यायश्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिमहाशयविरचिता
रागवर्त्मचन्द्रिका समाप्ता ॥

हे गोकुलानन्द ! हे लीलाविलासी ! भक्तिमञ्जरीमकरन्द के लोलुप मधुकर ! मौग्ध्य-सार्व्वज्ञनिधि आपको नमस्कार है। हे प्रभो ! आपने अपने मुख से कहा है—"मैं अपने भक्तों को तादृश बुद्धियोग प्रदान करता हूँ जिस से वे मुझको प्राप्त करते हैं" अतः हे गोपेन्द्रनन्दन ! मैं प्रार्थना करता हूँ कि—गोपीकुचों से अलंकृत तुम्हारा दास्य लाभ हो हमें उस प्रकार की बुद्धि दीजिये ।" जो सब कहते हैं—"रागानुगाभक्ति सब समय सर्वप्रकार से शास्त्र-विधि का अतिक्रम करती है" वे सब 'जो शास्त्रविधि का उलंघन करके श्रद्धा के साथ अर्च्चना करता है" तथा "विधिहीन, अदत्त अन्न इत्यादि ग्रहण करते हैं इन गीतावचनानुसार निन्दनीय हैं। वे तीनों कालों में विघ्नों के द्वारा उपद्रुत होते हैं। इस विषय में अधिक बोलना निष्प्रयोजन है । अहो ! रागानुगामार्ग अत्यन्त दुर्दर्श है। देवताओं के भी महान् अगोचर है । भक्तसुधीगण इस रागवर्त्मचन्द्रिका की सहायता से इस मार्ग का परिचय करें ॥ ८ ॥

लोक साहित्य प्रेस, मथुरा ।

उज्वलनीलमणिकिरणः ।

अथोज्ज्वलरसस्तत्र नायकचूड़ामणिः श्रीकृष्णः । प्रथमं गोकुलमथुराद्वारकासु क्रमेण पूर्णतमः पूर्णतरः पूर्ण इति त्रिविधः । धीरोदात्तः धीरललितः धीरोद्धतः धीरशान्त इति प्रत्येकं चतुर्विधः तत्र रघुनाथवत् गम्भीरो विनयी यथार्ह सर्व्वजनसन्मानकारीत्यादिगुणवान् धीरोदात्तः । कन्दर्पवत् प्रेयसीवशो निश्चिन्तो नवतारुण्यो विदग्धो धीरललितः । भीमसेनवत् उद्धत आत्मश्लाघारोषकैतवादिगुणयुक्तो धीरोद्धतः । युधिष्ठिरवत् धार्मिको जितेन्द्रियः शास्त्रदर्शी धीरशान्तः । पुनश्च पत्युपपतित्वेन प्रत्येकं स द्विविधः । एवं पुनश्च अनुकूलो दक्षिणः शठो धृष्ट इति प्रत्येकं चतुर्विधः एकस्यामेव नायिकायामनुरागी अनुकूलः, सर्वत्र समो दक्षिणः, साक्षात् प्रियं वक्ति परोक्षे अप्रियं करोति यः स शठः, अन्यकान्तासम्भोगचिह्नादियुक्तोऽपि निर्भयः मिथ्यावादी यः धृष्टः । एवं षड् नवतिविधा नायकभेदाः ॥ १ ॥

अथाश्रयालम्बननायिकाः प्रथमं स्वीयाः परकीया इति द्विविधाः कात्यायनीव्रतपराणां कन्यानां मध्ये या गान्धर्व्वेण विवाहिताः ताः स्वीयाः तदन्या धन्यादयः कन्याः परकीया एव । श्रीराधाद्यास्तु प्रौढाः परकीया एव । कियन्त्यः गोकुले स्वीया अपि पित्रादिशङ्कया परकीया एव । द्वारकायां रुक्मिण्याद्याः स्वीया एव ततश्च मुग्धा मध्या प्रगल्भा इति त्रिविधाः । मध्या मानसमये धीरामध्या अधीरामध्या धीराधीरामध्या इति त्रिविधाः । वक्रोक्तिपवित्रभर्त्सनकारिणी या सा धीरामध्या । मिश्रितवाक्या या सा धीराधीरामध्या श्रीराधा । तत्र प्रगल्भापि धीरप्रगल्भा

अधीरप्रगल्भा धीराधीरप्रगल्भा चेति त्रिविधा । तत्र निजरोष-गोपनपरा सुरते उदासीना या सा धीरप्रगल्भा पालिका चन्द्रावली भद्रा च । निष्ठुरतर्जनेन कर्णोत्पलेन पद्मेन या कृष्णं ताडयति सा अधीरप्रगल्भा श्यामला । रोषसंगोपनं कृत्वा किञ्चित्तर्जनं करोति या सा धीराधीरप्रगल्भा मङ्गला मुग्धातिरोषेण मौनमात्रपरा एक विधैव । एवं त्रिविधा मध्या प्रगल्भा त्रिविधा मुग्धा एकविधा इति सप्तधा । स्वीया-परकीया भेदेन चतुर्दशविधा । कन्या च मुग्धैवैकविधा इति पञ्चदशविधा नायिका भवन्ति इति । अथाष्टनायिकाः—अभिसारिका, वासकसज्जा, विरहोत्कण्ठिता, विप्रलब्धा, खण्डिता, कलहान्तरिता, प्रोषितभर्तृका स्वाधीन-भर्तृका । अभिसारयति कृष्णं स्वयं वाभिसरति या साभिसारिका । कुञ्जमन्दिरे सुरतशय्यासन माल्यताम्बूलादिकं मदनोत्सुका करोति या सा वासकसज्जा । कृष्णविलम्बे सति तेन विरहेणोत्कण्ठयते या सा विरहोत्कण्ठिता । यदि यात्येव कृष्णस्तदा विप्रलब्धा । प्रातरागतम् अन्यकान्तासम्भोगचिह्नयुक्तं कृष्णं रोषेण पश्यति या सा खण्डिता । मानान्ते पश्चात्ताप करोति या सा कलहान्तरिता । कृष्णस्य मथुरागमने सति या दुःखार्त्ता सा प्रोषितभर्तृका । सुरतान्ते वेशाद्यर्थं या कृष्णं ज्ञापयति सा स्वाधीनभर्तृका एवं पञ्चदशानामष्टगुणत्वेन विंशत्युत्तरशतानि । पुनश्चोत्तममध्यम-कनिष्ठत्वेन षष्ट्युत्तराणि त्रीणि शतानि नायिकाभेदानां तासां व्रजसुन्दरीणां मध्ये काश्चिन्नित्यसिद्धाः श्रीराधाचन्द्रावल्यादयः । काश्चित् साधनसिद्धाः । तत्र काश्चित् मुनिपूर्वाः काश्चित् श्रुति-पूर्वाः काश्चित् दव्य इति ज्ञेयाः ॥ २ ॥

अथ स्वभावाः । काश्चित् प्रखराः श्यामलामङ्गलादयः । काश्चिन्मध्या श्रीराधिकापालिप्रभृतयः । काश्चिन्मृद्वीति ख्याता-श्चन्द्रावल्यादयः । अथ स्वपक्षः सुहृत्पक्षः तटस्थपक्षा विपक्ष इति

भेदचतुष्टयं स्यात् । तत्रापि काश्चिद्वामाः काश्चिद् दक्षिणाश्च । श्रीराधायाः स्वपक्षः ललिताविशाखादिः सुहृत्पक्षः श्यामला यूथेश्वरी तटस्थपक्षः भद्रा प्रतिपक्षश्चन्द्रावली । तत्र काश्चिद्वामाः काश्चिद्दक्षिणाः स्युः । श्रीमती राधिका वामा मध्या नीलवस्त्रा रक्तवस्त्रा च । ललिता प्रखरा शिखिपिञ्छवसना । विशाखा वामा मध्या तारावलिवसना । इन्दुरेखा वामा प्रखरा अरुणवस्त्रा । रङ्गदेवीसुदेव्यौ वामे प्रखरे रक्तवस्त्रे च । सर्व्वा एव गौरवर्णाः । चम्पकलता वामा मध्या नीलवस्त्रा चित्रा दक्षिणा मृद्वी नीलवसना । तुङ्गविद्या दक्षिणा प्रखरा शुक्लवस्त्रा च । श्यामला वाम्यदाक्षिण्ययुक्ता प्रखरा रक्तवस्त्रा । भद्रा दक्षिणा मृद्वी चित्रवसना चन्द्रावली दक्षिणा मृद्वी नीलवस्त्रा, अस्याः सखी पद्मा दक्षिणा प्रखरा शैव्या दक्षिणा मृद्वी । सर्वा एव रक्तवस्त्राः ॥ ३ ॥

अथ दूती द्विविधा स्वयं दूती आप्तदूती च तत्राप्तदूती च त्रिविधा अमितार्था निसृष्टार्था पत्रहारिणी च । वाक्य विना इङ्गितेनैव या दौत्यं करोति सा अमितार्था, या आज्ञया समस्तं कार्यं करोति भारं वहति च सा निसृष्टार्था, या पत्रेण कार्यं करोति साधयति च सा पत्रहारिणी ताः शिल्पकारिणी दैवज्ञा लिङ्गिनी परिचारिका धात्रेयी वनदेवी सखी चेत्यादयः । व्रजे वीरा वृन्दा वंशी च कृष्णस्य दूतीत्रयम् प्रगल्भवचना वीरा वृन्दा च प्रियवादिनी सर्वकार्यसाधिका वंशी ॥ ४ ॥

अथ सखी पञ्चविधा सखी नित्यसखी प्राणसखी प्रियसखी परमप्रेष्ठासखी एषां मध्ये काचित् समस्नेहा काचिदसमस्नेहा या कृष्णे स्नेहाधिका सा सखी वृन्दा कुन्दलता विद्या धनिष्ठाकुसुमिका तथा कामदा नामात्रेयी सखीभावविशेषभाक् । या राधिकायां स्नेहाधिका सा नित्यसखी नित्यसख्यस्तु कस्तूरी

मनोज्ञा मणिमञ्जरी-सिन्दूरा चन्दनवती-कौमुदी-मदिरादयः । तत्र मुख्या या सखी स्नेहाधिका सा प्राणसखी उक्ता जीवितसख्यस्तु तुलसी केलीकन्दली कादम्बरी शशिमुखी चन्द्ररेखा प्रियम्वदा मदोन्मदा मधुमती वासन्ती कलभाषिणी रत्नावली मालती कर्पूरलतिकादयः । एता वृन्दावनेश्वर्य्या प्रायः सारूप्यमागताः । मालती चन्द्रलतिका गुणचूडा वराङ्गदा माधवी चन्द्रिका प्रेममञ्जरी तनुमध्यमा कन्दर्पसुन्दरीत्याद्याः कोटिसङ्ख्या मृगीदृशः प्रियसख्यः । तत्र मुख्या या सा परमप्रेष्ठसखी ललिता च विशाखा च चित्रा चम्पकवल्लिका रङ्गदेवी सुदेवी च तुङ्गविद्येन्दुरेखिका यद्यप्येताः समस्नेहास्तथापि श्रीराधायां पक्षपातं कुर्वन्ति ॥ ५ ॥

अथ वयः । वयःसन्धिः नव्ययौवनं व्यक्तयौवनं पूर्णयौवनं चेति कलावत्यादयो वयःसन्धौ स्थिताः । धन्यादयो नव्ययौवने स्थिताः श्रीराधादयस्तु व्यक्तयौवने स्थिताः चन्द्रावल्यादयः पूर्णयौवने स्थिताः पद्माद्याः पूर्ण यौवने स्थिता इत्यालम्बनविभावः ॥ ६ ॥

अथोद्दीपनविभावः गुणनामताण्डववेणुवाद्यगोदोहनविभूषणगीतचरणचिह्नाङ्गसौरभ्यनिर्माल्यबर्हगुञ्जावतंसकृष्णमेघचन्द्रदर्शनादिभेदाद्बहुविधः ॥ ७ ॥

अथानुभावाः भावः हावः हेला शोभा कान्तिः दीप्तिर्माधुर्य्यं प्रगल्भता औदार्य्यं धैर्य्यं लीला विलासो विच्छित्तिर्विभ्रमः किलकिञ्चितं मोट्टायितं कुट्टमितं विव्वोकं ललितं विकृतमिति विंशत्यलंकाराः तत्र निर्विकारात्मके चित्ते भावः प्रथमविक्रिया । तीर्यग्ग्रीवाभ्रूनेत्रादिविकाशसूच्यो हावः कुचस्फुरणपुलकादिनीविवासस्खलनादिसूच्या हेला रूपभोगाद्यैरङ्गविभूषणं शोभा शोभैव यौवनोद्रेके कान्तिः कान्तिरेव देशकालादिविशिष्टा दीप्तिः नृत्यादिश्रमजनितगात्रशैथिल्यं माधुर्यं सम्भोगवैपरीत्यं प्रगल्भता ।

रोषेऽपि नयनव्यञ्जनमौदार्य्यम् । दुःखसम्भावनायामपि प्रेम्णि निष्ठा धैर्य्यम् । कान्तचेष्टानुकरणं लीला । प्रियसङ्गे सति मुखादीनां तात्कालिकप्रफुल्लता विलासः । अल्पमात्राकल्पधारणेऽपि शोभा विच्छित्तिः । अभिसारादावतिसम्भ्रमेण हारमाल्यादिस्थानविपर्य्ययो विभ्रमः । श्रीराधाकृष्णयोर्वर्त्मरोधनादौ गर्वाभिलाष-रुदित-स्मितासूया-भयक्रुधासङ्करीकरणं हर्षादुच्यते किल किञ्चितम । कान्तवार्त्ताश्रवणे पुलकादिभिरभिलाषस्य प्राकट्यं मोट्टायितं । अधरखण्डनस्तनाकर्षणादौ आनन्देऽपि व्यथाप्रकटनं कुट्टमितं । वाञ्छितेऽपि वस्तुनि गर्वेणादरो बिव्वोकः । भ्रूभंग्या अङ्गभंग्या च हस्तेन च भ्रमरविद्रावणादिचेष्टितं ललितम् । लज्जादिभिर्यत् निजकार्यं नोच्यते किन्तु चेष्टया व्यज्यते तत् विकृतम् । इति विंशत्यलङ्कारा: । ज्ञातस्याप्यज्ञवत् प्रश्ने मौग्ध्यम् । प्रियस्याग्रे भ्रमरादिकं दृष्ट्वा भयं चकितम् । इति द्वयमधिकम् ॥ ८ ॥

अथान्ये अनुभावा: नीव्युत्तरीयधम्मिल्लस्रंसनं गात्रमोटनं जृम्भा घ्राणस्य फुल्लत्वं निःश्वासाद्याश्च ते मताः ॥ ९ ॥

अथ सात्त्विकाः । स्वेदस्तम्भादयोऽष्ट धूमायित-ज्वलित-दीप्त-सूदीप्ताः ॥ १० ॥

अथ व्यभिचारिणः । निर्वेदविषादाद्या भावाः ॥ ११ ॥

तत्र भावोत्पत्तिः भावसन्धिः भावशावल्यम् भावशान्तिरिति दशाचतुष्टयम् । भावोत्पत्तिः स्पष्टार्था, भावद्वयस्य मिलनं भावसन्धिः, पूर्वपूर्वभावस्य यः परपरभावेनोपमर्द्दः स एव भावशावल्यं, भावशान्तिर्भावस्यान्तर्धानमेव ॥ १२ ॥

अथ स्थायीभावः, मधुरा रतिः सा च त्रिविधा, साधारणी समञ्जसा समर्था इति । कुब्जायां साधारणी साधारणमणिवत् पट्टमहिषीषु समञ्जसा चिन्तामणिवत् व्रजदेवीषु समर्था कौस्तुभ-

मणिवत् । सामान्यभावेन स्वसुखतात्पर्यरतिः साधारणी । कृष्णस्य निजस्य च सुखतात्पर्यरतिः पत्नीभावमयी समञ्जसा । केवलकृष्ण-सुखतात्पर्यरतिः पराङ्गनामयी समर्था ॥ १३ ॥

अथ समर्था प्रथमदशायां रतिर्बीजवत् प्रेमा इक्षुवत् स्नेहो-रसवत् ततो मानं गुडवत्, ततः प्रणयः खण्डवत्, ततो रागः शर्करावत्, ततोऽनुरागः सितावत् ततो महाभावः सितोपलवत् । अथ प्रेमा । तत्र पूर्वसंस्कारतो वा श्रवणदर्शनादिभ्यो वा कृष्णे प्रीत्या मनोलग्नता रतिः । विघ्नसम्भवेऽपि ह्रासाभावः प्रेमा । चित्तस्य द्रवीभावनिदानं स्नेहः । तत्र चन्द्रावल्यादौ तदीयता-भावेन घृतस्नेहश्च आदरमयो भावान्तरमिश्रित एव सुरसो यथा घृतम । श्रीराधादौ मदीयताभावेन मधुस्नेह आदरशून्यः स्वत एव सुरसो यथा मधु । अथ मानः—स्नेहाधिक्येन भद्राभद्रहेतुना वा रोषेण वा हेतुना विनैव वा कौटिल्यं मानः । चन्द्रावल्यादौ दाक्षिण्योदात्तः क्वचिद्वाम्यगन्धोदात्तः । श्रीराधादौ तु ललितः । अथ प्रणयः—मनोदेहेन्द्रियैरैक्यभावनामयो विश्रम्भः प्रणयः, सख्यं मैत्र्यञ्च । अथ रागः—चन्द्रावल्यादौ नीलरागः स्वलग्न-भावावरणः । तत्रैव श्यामरागोऽपि प्रायो भद्रादौ चिरसाध्यरूपः श्रीराधादौ तु मञ्जिष्ठारागोऽनन्यापेक्षो भावावरणशून्यः । तथैव श्यामलादौ कुसुम्भरागः सुखसाध्यत्वात् किंचिदन्यापेक्षः ॥ पात्र-साद्गुण्यात् स्थितिः । अथानुरागः श्रीकृष्णः सदानुभूयते अथ च नवनवापूर्व इव बुद्धिर्यतो भवति सः अनुरागः । तत्र चाप्राणि-न्यपि जन्मलालसा प्रेमवैचित्त्यं विच्छेदेऽपि स्फूर्त्तिरित्यादि-क्रियाः । अथ महाभावः, स एव रूढः अधिरूढ इति द्विविधः । कृष्णस्य सुखे पीडाशङ्कया निमिषस्यापि असहिष्णुततादिकं यत्र स रूढो महाभावः । कोटिब्रह्माण्डगतं समस्तसुखं यस्य सुखस्य लेशोऽपि न भवति समस्तवृश्चिकसर्पादिदंशकृतदुःखमपि यस्य-

दुःखस्य लेशो न भवति । एवम्भूते कृष्णसंयोगवियोगयोः सुखदुःखे यतो भवतः सोऽधिरूढो महाभावः । अधिरूढस्यैव मोदनो मादन इति द्वौ रूपौ भवतः । यस्य उदये कृष्णस्य तत्प्रेयसीनां महाक्षोभश्चमत्कारो भवेत् सुदीप्तसात्त्विकविकारदर्शनात् स मोदनः । सतु राधिकायूथ एव भवति नान्यत्र । मोदनोऽयं प्रविश्लेषदशायां मादनो भवेत् यस्य उदये सति पट्टमहिषीगणालिङ्गितस्यापि श्रीकृष्णस्य मूर्च्छा भवति राधाविरहतापेन, ब्रह्माण्डक्षोभकारित्वं तिरश्चामपि रोदनञ्च । प्रायो वृन्दावनेश्वर्य्यां मादनोऽयमुदञ्चति । मादनस्य एव वृत्तिभेदो दिव्योन्मादः यत्र उद्घूर्णा चित्रजल्पादयः प्रेमभय्यो ऽवस्थाः सन्ति । यत्रानन्तभावोद्गमः । वनमालायामपि ईर्षा पुलिन्देष्वपि श्लाघा तमालस्पर्शिन्या मालत्या भाग्यवर्णनञ्च । एष मादनः सर्वश्रेष्ठः श्रीराधायामेव नान्यत्र ।। १४ ।।

अथैषामाश्रयनिर्णयः-कुब्जायां साधारणी रतिः प्रेमपर्य्यन्ता पट्टमहिषीषु समञ्जसा रतिः अनुरागपर्य्यन्ताः तत्र सत्यभामा राधिकानुसारिणी लक्ष्मणा च । रुक्मिणी तु चन्द्रावलीभावानुसारिणी अन्याश्च । व्रजस्थप्रियनर्म्मसखानां च अनुरागपर्य्यन्ता । व्रजसुन्दरीणां तु समर्थारतिः महाभावपर्य्यन्ता, सुबलादीनाञ्च । तत्रापि राधिकायूथ एव नान्यत्र । तत्रापि मादनः श्रीराधायामेव ललिताविशाखयोरपि ।। १५ ।।

स्थायीभावः । स एव विप्रलम्भः सम्भोगश्चेति द्विविधः । तत्र विप्रलम्भश्चतुर्विधः पूर्व्वराग, मानः प्रेमवैचित्त्यं प्रवासश्च । अङ्गसङ्गात् पूर्वं या उत्कण्ठामयी रतिः सः पूर्वरागः तत्र दशदशा "लालसोद्वेगजागर्या तानवं जडिमांगता । वैयग्र्यं व्याधिरुन्मान्दो मोहो मृत्यु र्दशा दश" । मानः द्विविधः सहेतुर्निर्हेतुश्च तत्र निर्हेतुकः स्वयमेव शाम्यति सहेतुकस्य मानस्य शान्तिः सामभेदक्रियादान-

नत्युपेक्षारसान्तरैः। प्रियवाक्यं साम। निजैश्वर्य्यं श्रावयित्वा तस्या अयोग्यत्वज्ञापनं भेदः! वयस्यादिद्वारा भयप्रदर्शनञ्च क्रिया। वस्त्रमाल्यादीनां प्रदानं दानम्। नतिर्नमस्कारः। उपेक्षा औदासीन्यप्रकटनम्। रसान्तरं भयकष्टादिप्रदानादिप्रस्तावः। मानशान्तिचिन्हानि अश्रुस्मितादयः। अथ प्रेमवैचित्त्यम कृष्ण-निकटेऽपि अनुरागाधिक्याद्विरहो यत्र भवति तदेवतत् अथ प्रवासः स द्विविधः किञ्चिद्दूरनिष्ठः सुदूरनिष्ठश्च नित्यमेव गोचारणाद्य-नुरोधात् किञ्चिद्दूरे मथुरां गते सति सुदूरे। तत्र च दश दशा अतिप्रबला भवन्ति। अथ सम्भोगः स च चतुर्विधः पूर्वरागान्ते चाधरनखक्षतादीनाम अल्पत्वे संक्षिप्तो, मानान्ते असूयामात्स-र्य्यादिदोषाभाससंमिश्रितः सङ्कीर्णः, किञ्चिद्दूरप्रवासान्ते सम्पन्नः स्पष्टः। सुदूरप्रवासान्ते समृद्धिमान् अतिस्पष्टः। अथ सम्भोगप्रपञ्चः दर्शन-स्पर्शन-कथन-वर्त्मरोध-वनविहार-जलकेलि-वंशीचौर्य्य-नौका-खेला-दानलीला-लुक्कायनलीला-मधुपानादयः अनन्ता एव ॥ १६ ॥

अनधीतव्याकरणश्चरणप्रवणो हरेर्जनो यः स्यात्।
उज्ज्वलनीलमणिकिरणस्तदालोकाय भवतु ॥

इतिमहामहोपाध्यायश्रीविश्वनाथचक्रवर्त्ति-
विरचितः उज्ज्वलनीलमणिकिरणः

समाप्तः ॥

———

* श्री राधाबल्लभो जयति *

लिखितं श्रृंगारचूड़ामणिग्रंथम्

शीतल कल कलि ताप हर उज्वल जोति प्रकास ।
श्रीहरिवंश चंद मेरें सदा रहौ हिये आकास ॥
चित्तभूमि अभिलाष बहु अमित औषधी रूप ।
रस अमृत करुना किरन सींचहु प्रेम अनूप ॥
कारन को कारन जु है सर्वेश्वर कमनीय ।
अनंत प्रकाश अचिंत गति नित बिलास रमनीय ॥
दुर्गम गति योगींद्र हूँ ब्रह्म रुद्र रिषि आन ।
ताकौ रस तिहिं कृपा तें बरनौं मति अनुमान ॥
सो नंदनंदन कृष्ण तिन प्रिया राधिका जान ।
अखिल रसनि मय लसत नित उज्वल रस परिधान ॥
जे व्याकरन पढे नहीं कृष्ण चरन मन दीन ।
रसास्वाद चाहत कियौ श्रद्धा शुद्ध प्रवीन ॥
गौर नील छवि में रंगे मननि शील रस वेद ।
तिन हित बिवरन कछुक यह उज्वल रस कौ भेद ॥
सबै सच्चिदानंद मय लीलारस बहु भाइ ।
नित्य एक रस नवल कल नव नव भाइ लसाई ॥
प्रथमहि आलंबन सु द्वै विषै आश्रय नाम ।
सो हैं नायक नायिका कृष्ण राधिका वाम ॥ ९ ॥
विषयालंबन बरनियत रचि रुचि मधुरे बैंन ।
नायक चूडामणि अहो कृष्ण मनोहर मैंन ॥ १० ॥

गनत वनत नहिं भेद बहु नायक कृष्ण किशोर ।
दिग दरसन हित छ्यानवै लिखत विनय कर जोरि ॥
सो ब्रज मथुरा द्वारिका क्रम करि मन धरि एव ।
पूरनतम अरु पूर्नतर पूरन त्रिविधि सु नेव ॥
धीरोदात्त इक दुतिय सुनि धीर-ललित उच्चार ।
धीरोद्धत तृतिय हि लहौ धीरशांत ये चारि ॥
एक एक प्रति चारि ये तीन ठौर करि जोरि ।
बारह भेद भये अबर लछिन सुनि कछु थोरि ॥
रघुवर सम गंभीर अरु विनय सर्व सनमान ।
इत्यादिक गुण जुत जहाँ धीरोदात्त बखान ॥
काम समान जु प्रियावस पुनि निश्चित विदग्ध ।
धीर ललित तासौं कहत जिन मति काम अदग्ध ॥
भीम समानौद्धत गुन आप जु श्लाघा रोष ।
कपट आदि बहु जानियैं धीरोद्धत लिख तोष ॥
युधिष्ठिर वत् धर्मात्मा गुन इंद्रीजित शास्त्रज्ञ ।
धीरशांत तासौं कहत रसज्ञाता सर्वज्ञ ॥ १८ ॥
एक एक प्रति समझियै नायक दुविधि प्रसिद्ध ।
इक पति इक आसक्त जुत मधुर प्रेममय शुद्ध ॥
नित्य कांता कांत नित नित आसक्त सरूप ।
नित्य प्रकाश बिलास रस शक्ति अचिंत अनूप ॥
द्वै भेदनि दुगुने भये चतुर विंश रस दाँन ।
चारि चारि पुनि एक प्रति औरो सुनिदै काँन ॥
अनुकूल रु दच्छिन धृष्ट शठ यह तिनकौ व्याख्यान ।
रस परिपाटी में सबै आँहि रसनि की खाँनि ॥
एक नायका विषैं जो अनुरागी अनुकूल ।
सर्वत्र समो दच्छिन सु है लिख्यौ सत कविनि मूल ॥

साज्ञात जो प्रिय कहै अप्रिय करै परोछ।
तासौं सठ सब ही कहैं जामें ऐसौ दोछ॥
चिन्ह अन्य संभोग जुत निर्भय मिथ्यावाद।
सिष्ट कहत हैं धृष्ट तिहि जा महि गुन इत्यादि॥
ऐसैं भये चौवीस के चतुर गुने लै वेद।
चारि घटि शत इति भनैं समझौ नायक भेद॥
आश्रयालंबन नायिका आँहि राधिका चारु।
ब्रज-वधुवनि की मुकटमणि नित्य प्रकाश अपार॥
स्वरूप शक्ति अल्हादिनी कृष्ण मयी रस रूप।
अंशी जु सर्व लक्ष्मी सर्ब शक्ति मय स्तूप॥
पति कांता वनिता अवर आसक्ता द्वै भांति।
बृज मथुरा पुनि द्वारका नित्य ही सबै लसाति॥
श्री कात्यायनि व्रत परा कन्या जे तिन मध्य।
जो गांधर्व विवाहिता पतिवनिता ते शुद्ध॥
हैं प्रछन्नता करि तेइ पतिवनिता हिय लाब।
अप्रछन्नता नाहिनें यह शुक मुख कौ भाव॥
अन्या जे धन्यादि हैं कन्या तिन सुनौं वात।
आसक्ता रति जुता सब अद्भुत भाँति लसाति॥
और सु गोपबधूनि की लिख आसक्ता रीति।
जुबति जूथ में जग मगै सर्वोपरि जिन प्रीति॥
पति-बनिता गोकुल विषैं कथ्यौ कछू तिन हेत।
पित्रादि शंकया करि तेऊ आसक्ता सुख देत॥
रुक्मिण्यादि सवै जिती आँहि द्वारिका मध्य।
पतिवनिता निश्चै सकल जानत जगत प्रसिद्ध॥
रसनि अवधि श्रीराधिका कौंन नायिका तूल।
वहु प्रकाश रस भेद कौं सब प्रकाश की मूल॥

पै प्रसिद्धि साधुनि लिखी आइ तीन सै साठ।
रसिकनि मन अवलंब हित भजन रीति रस पाठ ॥
मुग्धा मध्या प्रगलभा त्रिविधा समये मान।
धीर अधीर सु कथत हैं धीरा धीर सुजान ॥
कुटिल अमल रचना वचन सो मध्या है धीर।
कठोर भाषिनी जानियें सो मध्या जु अधीर ॥
मिश्रित वाकनि सौ लहौ मध्या धीरा धीर।
रसिक रहसि यह सुनत हैं जमुना कुंज कुटीर ॥
ऐसैं हि तीन पकार जो आहि प्रगलभा रीति।
ब्यौरौ ता कौ कहत हौं सुनौ श्रवन दै प्रीति ॥ ४१ ॥
निज सुरोष गोपनपरा सुरत हूँ मांझ उदास।
धीर प्रगलभा कहत हैं ताकौं रसिक प्रकास ॥
कठिन बचन तर्जन करै कर्णोत्पल कर धारि।
अधीर प्रगलभा यहै सुनि ताडति नंद कुमार ॥
रोष हि ढाँपति कछुक पुनि तर्जन करत जु आहि।
धीराधीर सु प्रगलभा रसिक विचारत ताहि ॥
मुग्धा मान समैं बिषै रोदन मौन ही एव।
मुग्धा एक विधा यहै और न यामें भेव ॥
मुग्धा एक बिधा अवर मध्या त्रिविधा भाष।
त्रिविधा जान हु प्रगलभा सप्त विधा मन राखि ॥
पतिकांता वनिता कहीं आसक्ता द्वै ख्यात।
द्वै भेदनि करि दुगण गनि भई चतुर्दश जात ॥
कन्या मुग्धा एक विधि भई पचदश एहु।
अष्टनायिका भेद अब कहौं तहां चित देहु ॥
प्रथम एक अभिसारिका बासकसज्जा दोइ।
तृतिय विरह-उत्कण्ठिता चौथी कहीं सु जोइ ॥

चतुर्थ विप्रलब्धा बहुरि पंचम खण्डिता जाँन।
कलहंतहिता कौं अहौ छटी बुद्धि अनुमान ॥ ५० ॥
स्वाधीनभर्त्तृका सात ई प्रोषितभर्त्तृका आठ।
ये अष्ट जो नायिका रसिक भक्त करैं पाठ॥
जोव कृष्ण पर अभिसरत साभिसारिका नाम।
कृष्ण जोतिस्ना दुविधि बरनत कवि अभिराम॥
कुंज सु मन्दिर में ललित सूरत सेज रचे प्रीति।
रमन उत्सुका नायिका वासक सज्जा रीति॥
कृष्ण बिलम्ब सु होत ही विरहोत्कंठा होइ।
सोई विरहोत्कंठिता कहत जु वुधि जन लोइ॥
जब कृष्ण आए नहीं तब कहियत ये वैन।
होत विप्रलब्धा सोई तरुनी तिहि छिन ऐन॥
संभोगकांता अन्य करि चिन्ह सहित ही प्रात।
आये कृष्ण हि रोष कै देखि कहै कछु बात॥
यहै खंडिता नायिका ख्यात रसज्ञनि मध्य।
औरो हू भनियत कछू महत ग्रंथ मत शुद्ध॥ ५१ ॥
मानान्तर जो करति है पश्चात्ताप हि तीय।
सो कलहंतरिता सही धरौ रसिक रस हीय॥
सुरत अंत में कृष्ण कौं जोव आग्या देह।
वेष बनावन हेत ही स्वाधोन-भर्त्तृका एह॥
होइ सुप्रोषित भर्त्तृका गवन मधुपुरी कृष्ण।
बरनत रहत हैं महत सब रसभेदनि मति तृष्ण॥
कथी पंचदश बहुरि ये अष्टगुनी गनि चित्त।
भई एक सै बीस हौ ठीक समझनों मित्त॥ ६१
उत्तम अरु मध्यम जु है पुनि कनिष्ठ करि पाठ।
तिगुनी करैं सुनायिका भेद तीन सै साठ॥

तिन श्री ब्रजवनितानि में कोऊ नितसिद्धा आँहि।
सो श्री राधा आदि दै जूथ अनेक लसाहि॥
कोऊ साधन सिद्धा जु हैं तिन के तीन प्रकार।
वेद अमर मुनि इति सकल भईं सु गोपकुमार॥

अथ सुभाव

कोऊ प्रखरा मध्या कोऊ कोऊ मृद्वी विख्यात।
इन कौ सुमिरन करत हैं रसिक सांझ अरु प्रात॥
सुन हु स्यामला मंगला इत्यादिकनि सुभाव।
प्रखरा इन कौं भाषियत और कथौं लहि चाव॥
श्री राधा रस अगाधा पाली पुनि इत्यादि।
ये मध्या मन में धरौ महा प्रेम अहिलाद॥
चंद्रावलि भद्रादय हि मृद्वी महत कहत।
अथ भेद चतुष्टय और हू सोई हेत भनत॥
इक स्वपच्छ दुतिय हि लहौ सुहृत्पच्छ चित देहु।
तथस्थ प्रतिपच्छे कहुँ नीकें ही सुनि लेहु॥
श्री राधा की स्वपच्छा ललिति बिशाखा आदि।
सुहृत्पच्छ हैं श्यामला सदा हृदैं अहिलाद॥
तटस्थ पच्छ भद्रादि दै प्रतिपच्छिन चंद्रालि।
भे द्वचतुष्टय ये भनें हित जुत हित श्रद्धालि॥
श्री राधाजी कौं जानियें वामा मध्या चारु।
नीलंबरा रु और हू रक्तंवरा विचार॥
वामा प्रखरा समझियै लज्ञिता जू कौं चित्त।
शिखी पिंछ वसना लसै परम मनोहर हित्त॥
वामा मध्या बिशाखा तारावली सुवास।
वामा मध्या नीलपट चंपकलता प्रकास॥

दच्छिण मृद्वी नीलपट चित्रा जू कौ जान।
दच्छिण प्रखरा शुक्लपट तुंगविद्या पहिचान ॥ ७१ ॥
इन्दुलेखा वामा प्रखर अरुण वस्त्र छवि सोहि।
वामा मध्या रक्तपट देवी दोऊ जोहि ॥
इक रंग देवी दुतिय लहु सखी सुदेवी हीय।
इन दोनों के नाम ये एक ठौर लिख लीय ॥
वाम्य दाच्छिन प्रखर जुत सुनों श्यामला बैन।
दच्छिण मृद्वी उर धरौ भद्रा मुद्रा ऐन ॥
दच्छिना मृद्वी कहत है चंद्रावलि इम जान।
तिन की सखि पद्मा जु ई दच्छिना प्रखर बखान ॥ ७६ ॥
दच्छिण मृद्वी लिखत हैं शैव्या श्रवन कराव।
अब दूती दुविधा भनौं न्यारे शील सुभाव ॥
प्रथम स्वयंदूती बहुरि आप्तदूती दोइ।
आप्त दूती तीन विधि लच्छिन भाषौं जोइ ॥
वाक बिना इंगित लहै जो बहूत करै जाइ।
अमितार्थी सोई लिखी बड़ी चतुरई पाइ ॥
अग्या करि कारज सकल करै कहौं तिहि नाम।
निसृष्टर्थी दूतीय है कही कहै जो वाम ॥
कारज कौं साधे जु ई पत्री ही सौं धाइ।
कहैं पत्रहारी वहै रसिक सबैं कविराइ ॥
शिल्पकारिणी लखहु जु दैवज्ञा अरु आन।
वेषधरनि परिचारिका धात्रेयी लै जान ॥ ८९ ॥
बनदेवी पुनि सखीं सुनि इत्यादिक ब्रज माँझ।
समैं पाइ सब अनुसरैं गनैं न भोर हि साँझ ॥
वीरा वृंदा बाँसुरी कृष्ण सु दूती तीन।
प्रगल्भ वचन वीरा वदन प्रिय वृंदा जु प्रवीन ॥

सब ही कारज साधिका बंशी सम नहिं कोइ ।
पांच प्रकार व सखी सुनि लिखी प्रीति सौ जोइ ॥
प्रथम सखी हिय में धरौ नित्य सखी गनि दोइ ।
प्राण सखी अरु प्रिय सखी परम प्रेष्ठ रस भोइ ॥
स्नेह अधिक करै कृष्ण सौं सखि सोई लै जानि ।
कुसुमिका रु विदूयाजिती धनिष्ठादि एतानि ॥
स्नेह अधिक राधा विषैं नित्य सखी सों आहिं ।
कस्तूरी मनिमंजरी इत्यादिक ल चाहि ॥
तिन हूं मैं जो मुख्य हैं प्राण सखी सो देखि ।
वासंती अरु शशिमुखी लासिकादि लै पेखि ॥
समस्नेह दोनों हि में कहतु प्रिय सखी ताहि ।
कंदर्प सुंदरी शशिकला कुरंगाक्षी इत्याह ॥ ६३ ॥
तिन में मुख्य सु जानियैं परमप्रेष्ठ सखि एव ।
ललित विसाखा अष्ट ये तिन चरननि चित देव ॥
जदपि समस्नेहा तदपि एक रीति इन और !
श्री राधा कौ करत हैं पक्षपात ही दौर ॥

अथ वयः—

बयस सधि नबयौवन व्यक्त सु यौवन चारु ।
पूरन यौवन बरनीयें ये जु भांति हैं चारि ॥
वय संधि में रहैं नित कलावती इत्यादि ।
नव जोवन धन्यादि दै स्थित नित्य हूलादि ॥
श्रीराधादि स्थित सदा व्यक्त सु जोवन मद्धि ।
स्थिता पूरन यौवन में चद्रावलि जे शुद्ध ॥
इत्यालंवन विभाव हि वरन्यौं कछुक बनाइ ।
अथ उद्दीपन विभाब हि रंचक देंहु जनाइ ॥

गुन नाम तांडव बेणुधुनि गोदोहन पुनि आन।
भूषन गीत रु चरन के चिन्ह स्फूरति दान॥
अंगसौरभ निर्माल्य सुनि वहं गुंज अवतंस।
काल कलानिधि मेध वहु दरसन भेद प्रसंस॥

अथ अनुभावा--

भाव हाव हेला कहे शोभा कांति निहारि।
दीप्ति वहुरि माधुर्य्य पुनि प्रगलभता चारु॥
औदार्य्य धैर्य्य रु लीला लहु विलास विच्छित्त।
विभ्रम किलकिंचित निकट मोट्टायित हो मित्त॥
मनों कुट्टमित और हू विवोक मन आन।
ललित बिकृत इति विंश ये जानत रसिक सुजान॥
चित कौ प्रथम विकार कछु द्रगनि चपलता होइ।
भाव सु ताकौं कहत हैं कवि रसज्ञ रस जोइ॥
तिरछी ग्रीवा भ्रू लता नेत्रादिकनि विकास।
या कौं हाव लिख्यौ सबनि रस ग्रंथनि परकास॥
कुच स्फुरण पुलकनि अवर नीवी खसनि सु और।
हेला याही कौं कहैं जे जु रसिक सिरमोर॥
सुरत अंत तन अलस गति भूषन अस्त व्यस्त।
शोभा नाम बखान ही वुध जन जगत समस्त॥
शोभा करि कै होइ जो जोवन को उद्रेक।
ताकौ कांति बखान ही कवि जन जगत अनेक॥
देस काल कौं पाइ कै संभोग अधिक में जोइ।
कांति सुई ह्वै जाइ जू दीप्त नाम रस भोइ॥
नृत्य आदि श्रम जनित अँग सिथल लसनि छवि ऐंन।
ताहि कहें माधुर्य्य रचि बड़े कवीश्वर बेंन॥

संभोगे विपरीति गति सो प्रगल्भता आहि ।
रोषे पि विनय विंजन करै औदार जु ते चाहि ॥
दुख की जही संभावना निष्ठा प्रेम न जाइ ।
धैर्य्य ताकौं मानियैं अद्भूत भाँति लखाइ ॥
कांत चेष्टा अनुकरन लीला तांही भाखि ।
पुनि विलास कौं वरनि हौं लीजौ मन में राखि ॥
पिय सङ्ग होत मुखदिकनि प्रफुलतता ही वेग ।
यह विलास है वदत सब बुधजन जूथ अनेग ॥
अलप आभरण धरन में सोभा सो विंछित्त ।
विभ्रम मति अनुसार ही वरनों सुनियौं मित्त ॥
अभिसार आदि में होइ जब अति संभ्रम कै एव ।
शृङ्गार विपर्जय अँगनि पर सो विभ्रम सुनि लेव ॥
मारग रोधन आदि में गर्व और अभिलाष ।
रोदन स्मित असूया हरष क्रोध भय भाष ॥
इनहि आदि दै मिलन तें किलकिंचत अस नाम ।
लख हु रसिक रस रीति इम नव भावनि अभिराम ॥
पिय वच सुनि पुलंकादि करि प्रगटे हिय अभिलाष ।
मोहायित ताकौं लिख्यौ रस ग्रन्थनि में साष ॥
उर आकरषन अधर छद और हू विधि आनंद ।
प्रगटनि विथा सुकुर्द्दामत सुनहु रसिक रसकंद ॥
वांछित वस्तुनि गर्व करि जहाँ अनादर होइ ।
सो बिब्बोक जु लोक में जानत हैं सब कोइ ॥
भृकुटी अंग भङ्गी अवर झनत्कार कर जानि ।
भवर उड़ावन आदि जो चेष्टा ललित बखानि ॥
लज्या करि निज काज कौं कहै नहीं जो तीय ।
किंतु चेष्टा व्यंजन यहै विहृत धरौ हीय ॥

अलंकार विंशत जु ये दोइ और धरौ चित्त ।
इक मौग्ध्य चकित दुतिय कहौं व्याख्या मित्त ॥
जान बूझ सु अजान कहै करै कछू जो प्रश्न ।
मौग्धताहि निहारियै सुनहु रसिक रस त्रष्ण ॥
प्रिय आगैं भ्रमरादि दिखि होइ भय चकित नारि ।
ताही कौं भय चकित हौ लिखत मन विषैं धारि ॥
और हू ये अनुभाव हैं सोऊ सुनि दैं कांन ।
खसनि जु नीवी उत्तरो धमिल्ल हि लै जान ॥
अंगनि ऐंडनि जृंभ पुनि घ्राण फुल्ल निस्वास ।
इत्यादिक वहु जानियें सबै सुखनि की रासि ॥

अथ सात्विका:—

स्तंभ स्वेद रोमांच पुनि वेपथ और स्वरभेद ।
वैवर्ण अश्रु प्रलया इती अष्ट सात्विकनि वेद ॥
ते धूमायित ज्वलित लहि दीप्त उद्दीप्त चारि ।
सुदीप्ति इति पंच विधि कृम करि मुख्य निहारि ॥

अथ व्यभिचारी:—

निर्वेद विषादुन्माद मद दैन्य ग्लानि रु गर्व ।
शङ्का त्रासावेग श्रम अपस्मृतो औ सर्व ॥
व्याधि मोह मृति आलस जाड्य व्रीड अवहित्थ ।
चिंता ग्लानि सुवितर्क धृति स्मृति हर्ष रचिकथ्थ ॥
अमरष उत्सुक असूया उग्रय चापल आनि ।
सुप्त बोध निद्रा इती व्यभिचारी भावनि ॥
तहाँ भाव उत्पति अरु भाव संधि धरि चित्त ।
पुनि व भाव शाबल्य कहु भावशान्ति इति मित्त ॥

सुनौ भाव उत्पत्ति जू स्पष्ट अर्थ ही ख्यात ।
भाव दो इकौ मिलित जहाँ भाव संधि विख्यात ॥
पहिले पहिले भाव कौं और भाव प्राबल्य ।
जब हि करै उपमर्द ही वहै भाव शावल्य ॥
भाव कौ अंतरधान हो भावशन्ति उच्चार ।
अथ स्थायीभाव अरु मधुरा रति हि विचारि ॥
प्रथम आहि साधारनी लहु समजंसा दोइ ।
पुनि व समर्था तीसरी कथी व्याख्या जोइ ॥
कुब्जा की साधारणी मनिवत् मन में ल्याव ।
पट्ट महिषीनि समंजसा चिंतामनि सम ध्याव ॥
व्रजदेवीनि विषैं सुनैं भनों समर्था नैंन ।
कौस्तुभमनिवत् लसत नित अद्भुतता कौ ऐंन ॥
सामान्य भाव कै स्व सुख मैं तात्पर्ज जिहि होइ ।
सोई है साधारणी रसिक सुनों सब कोइ ॥
जोव कृष्ण कौ आपनों सुखहि विचारै जोय ।
पत्नी भावमई लसै सो समंजसा तीय ॥
केवल एक सु कृष्ण के सुख में मति अभिराम ।
सो आसक्तिमई लखहु सदा समर्था वाम ॥
तहां समर्था रति सुनी प्रथम दशामहि बीजु ।
तातें प्रेमा इक्षुवत ग्रंथनि मांहि कही जु ॥
तातें भनों स्नेह कौं रसवत् रसना भाष ।
तातें मान हि बुधि विषैं गुडवत् लीजै राख ॥
तातें प्रणय सु खण्डवत तातें राग हि जानि ।
कह्यौ शर्करावत हि तू हित सौं करि पहिचान ॥
तातें जू अनुराग कौं लेहु सितावत् चीन्ह ।
तातें और सु यहै है महाभाव रस लीन्ह ॥

खिवोपलावत् है सोई महाभाव हे मित्त ।
इनके लछिन कथत हौं नीकें यहि जौ चित्त ।।
पूरव ले संस्कार कै कृष्ण विषैं रति होइ ।
किंवा श्रवन रु दरसन मनोलग्नता जोइ ।।५०।।
ललनानिष्ठ स्वरूप कै सुनि यौं ताकौ अर्थ ।
अकस्मात स्फूर्ति हिय सो व क्रिया हि समर्थ ।।
धटनि अभाव सु विघ्न हू प्रेमा ताहि वखान ।
द्रवीभाव जे चित्त कौ सो स्नेह लै मान ।।
तहाँ चन्द्रावलि आदि दै जे तदीयता भाव ।
घृतस्नेह आदरमय हि और भेद चित लाव ।।
भावांतर मिश्रित सुरस जथा घृत लै आन ।
श्री राधादि मदीयता मधुस्नेह मन आन ।।
आदर शून्य स्वत ह सुरस जथा मधु उर धारि ।
अथ सुमान कौं मन धरौ लछिनता हि निहारि ।।
स्नेह अधिक तें होइ अरु भद्राभद्र जु हेत ।
रोष विनय कै वाम्य जो मान मन धरौ एत ।।
चंद्रावली सु आदि में हैं दक्षिण्योदात्त ।
वाम गंध उदात्त कहुँ यहै आहि विख्यात ।।
श्रीराधाजी आदि में कौटिल ललित अरु आन ।
नर्म ललित पुनि वरनियत लेहु उपासिक जानि ।।
एक भावनामय जहाँ मन ई ही अरु देह ।
प्रचुर प्रणय सोई जानियें कहत रसिक जन एह ।।
चंद्रावली सु आदि में विनय जुक्त करि देखि ।
आहि मैत्री सुमित्री लेहु भाव कौ पेखि ।।
श्री राधाजि आदि में यहै जानि वीचित्र ।
आहि स्ववसतामय अहो सख्य सुसख्य मित्त ।।

अथ राग सुन कृष्ण सम्वन्धि हि अधिक दुख सुख रूप ।
तिन सम्वन्धि बिना जु सुख होइ दुख को कूप ।।
यह गति होइ जहाँ रसिक तहां जानियैं राग ।
रस भेदनि में निपुने ते समझें बड़ भाग ।।
तहाँ लखो चन्द्रावली नीलीराग वखान ।
स्वयग्न भावावरन है जानत रसिक सुजान ।।
तैसे हि स्यामा राग है भद्रादिक मैं आहि ।
वहुते साध्य जु रूप है लीजो मन अवगाहि ।।
श्रीराधादि विषैं अहौ है मञ्जिष्ठाराग ।
अन अपेछ भावावरन शून्यजानि बड़ भाग ।।
गन हु श्यामला आदि में राग कुसुंभ हि भित्त ।
सो व आहि सुख साध्य हो और हू धरिजो चित्त ।।
किंच अपेत्ता आन हूँ भाजन कौ सदगुन्य ।
ता करि स्थिर लिखत हैं बुधि जन सुधि ही मन्य ।।

अथ अनुरागः—

श्रीकृष्ण सदा अवलोकनो नव नब लागे मीति ।
ऐसी बुधि हुइ जासु तें सो ग्रनुरागहि रीति ।।
अप्राणिनि में उपजई जनम लालसा हीय ।
लहौ प्रेमवैचित्य पुनि अवर धरौ कछु जीय ।।
विछेद विषैं स्फूर्ति सुनि इत्यादि क्रिया लै जान ।
महाभाव अब कथत हौं श्रवन करौ निजु प्रान ।।
बिन सीमा अनुराग जब वृद्धि हि प्रापति होइ ।
सूरजवत रवि-कांत में प्रिय सम्वन्धिनि जोइ ।।
स्वभाव समर्पक होइ जब महाभाव तव लेष ।
सो जु रूढ़ अधिरूढ़ इति दुविधि बुद्धि करि पेष ।।

सुख में ही श्रीकृष्ण जू पीड़ा संका खेद ।
असहन जहाँ निमेष हू सो जु रूढ़ लै वेद ॥
कोटि ब्रह्मांडनि में जु सुख वैकुंठ हु में जान ।
सब सुख जिहि सुख लेस हू कह्यो न जात वखान ॥
सब वृश्चिक सर्पादि करि होइ महत अति दुख्य ।
सो दुख तिहि दुख लेस हू कहत न आवै मुख्य ॥
कृष्ण संजोग वियोग करि सुख दुख जहाँ अस होइ ।
कहियै जू अधिरूढ़ यह महाभाव है सोइ ॥
सो अधिरूढ़ दुरूप भनि मोदन माद नाम ।
व्यौरे दुहुवनि के सु ये मन राखौ अभिराम ।
जा के उदै विषैं लहौ कृष्ण प्रेयसी आँनि ।
चमत्कार महा छोभमय सूद्दीप्त दरसानि ॥
सो मोदन ही मन धरौ राधा जूथ हि होइ ।
अन्यत्र कहूं नहि होइ जू भूलि न भाषौ कोइ ॥
मोदन विरह दशा विषैं मोहन होई हेरि ।
पटमहिषीगन करि जहां आलिगन जावेर ॥
तहां कृष्ण कौ मूरछा राधा विरहे ताप ।
ब्रह्मांड छोभ कारक तृजग रोदन ही आलाप ॥
प्राय सु राधाजी विषैं मोहन कहत उच्चार ।
मोहन वृत्ति जु भेद ही हि व्युन्माद निहारि ॥
जहां भ्रममई अवस्था अरु उदघूर्णा मीत ।
चित्र जल्प इत्यादि वहु कहा भाषियै नीति ॥
अथ मादन मन में धरौ जहां प्रगट वहु भाव ।
वनमाला सौ ईरषा भील वधूनि मल्हाव ॥
लपटि तमाल खि मालती वरनें ताकौ भाग ।
सर्वश्रेष्ठ मादन जु वह इक राधा में जाग ॥

अनत नहीं कहीं जानियैं निश्चै योंहीं आहि ।
अब आश्रय निरनैं करौं सोऊ लीजौ चाहि ॥
कुब्जायां साधारणी रति प्रेमा पर्जंत ।
पटमहिषीनि समंजसा रति अनुराग भनंत ॥
तहां सतभामा जानियें राधा भाव अनुसारि ।
पुनि सुलक्षमण तै सहीं कीजतु है उचार ॥
चंद्रावलि अनुसार हीं लहौ रुक्मिणी भाव ।
मुरूयनि में दोइक लिखीं और हू मन में ल्याव ॥
जिते सखा प्रियनर्म व्रज सानुराग लौं आन ।
समर्था रति बृजसुन्दरी महाभाव लौं मानि ॥
त्यौं ही सुबलादीनिकहुँ धरौ हिये के मध्य ।
मोहन राधा जूथ में अनत नहीं अनुअद्ध ॥
मोहन श्रीराधा विषै ललित विसाख हू लिरुय ।
अनत नहीं तिन जूथ में और सुनौं किन सिष्य ।
मादन श्रीराधा विषैं न तु ललतादिक माँझ ।
इति स्थाईभाव कहि जप हु प्रात अरु साँझ ।।
सो विप्रलम्भ सम्भोग इति द्वै भांति निरधार ।
तहाँ विप्रलम्भकौं चारि विधि करियत है उचार ।
पूर्वराग इक दुतिय अरु मान मानि ले चित्त ।
तृतीय प्रेमवैचित्य अरु प्रवास है मित्त ॥
अंग संग तें पहिलहीं उत्तकंठा रति जोइ
सोई पूरवराग कथित हाँ दसा दस होइ ॥
कृशता जडिमा लालसा जागर्या उदवेग ।
विभ्र व्याधि उन्माद अरु मोह मृत्युदश थेग ॥
मान दुविधि बुधजन कहत सो सहेतु निर्हेतु ।
शांति आप ही होइ जू निर्हेतुक इति चेत ॥

शांति सहेतुक मान की होइ जु इतनी भाति ।
साम भेद पुनि दान नति और उपेछा जांत ॥
कहौं रसान्तर और जो व्यौरौ तिन कौ भाषि ।
प्रिय सुवाक कहैं साम कौं सो मनही में राखि ॥
निजु ऐश्वर्ज सुनाइवौ तिन्है अयोग जनाइ ।
वयसादिक द्वारा निर्भय दरसन भेद दिखाइ ॥
वसन माल सौगन्ध पुनि और हू दान कहाइ ।
नमस्कार सौं नति कहत सुनियौं चित्त लगाय ॥
उदासीनता प्रगटनों सुनों उपेच्छा कान ।
भय रु कष्ट प्रस्ताव जे हेतु रसांतर जान ॥
मान शांति के चिन्ह ये आँसू स्मित आदि ।
अथ सुप्रेम वैचिन्य कौं धरौ हियें अह्लाद ॥
कृष्ण निकट हूँ होत है विरह जहाँ उफलाइ ।
सोव अधिक अनुराग करि प्रेमविचित्य लिखाइ ॥
अथ प्रवास द्वै भांति कौ किंचदूरि व सुदूरि ।
नित गोचारन किंच अरु मथुरा जान सुदूरि ॥
तहां दश दशा अति प्रबल लिखी लिखन नहि जाइ ।
अथ संभोग हि वरनि हों चारि भांति चित लाइ ॥
संच्छिप्त एक अरु दुतिय जो संकीरण मन धारि ।
तृतिय आहि संपन्न भनि समृद्धिमान इति चारि ॥
पूर्वराग अंत में कुच अधर नख च्छत आन ।
अल्प अल्प कै समझिवो सो संच्छिप्त वखान ॥
मान अंत में असूया मत्सरता औ देखि ।
रोष भास मिश्रित सोई संकीरण लै पेखि ॥
किंच वहुरि प्रवास के अंत भाषियत जोइ ।
सम्पन्न सपष्ट रस रसज्ञ नाम कहत सब कोइ ॥

सुनों सु दूरि प्रवास के अंत विषैं यह नाम ।
समृद्धिमान इम धरत हैं बुद्धिमान अभिराम ॥
अब सम्भोग प्रपंच कछु कहौं जु मति अनुसार ।
दरसन परसन और हू मगरोकनि उचार ॥
रास अधिक सुख रासि हो वनविहार जल केलि ।
वंशी चौरन दान पुनि लुक्कायन बहु खेलि ॥
मधुपान आदि अह्लाद कथि अनंत परकास ।
रसिकदास रस रासि कहि दिग दरसन सुविचार ।
ब्रह्म रुद्र नारद भरत पाराशर सुत व्यास ।
शुक मुनिंद्र रस गूढ़ गति मिश्रत मोद प्रकास ॥
कठिन संस्कृत में लहिनि आरष हारद भेद ।
रसिक उपासिक महात जन प्रगट कियौ बिन खेद ॥
श्रीगुरु प्रसाद तें सबनि मिलि कीनों कृपा प्रसाद ।
सूत्र मात्र रस विवर तब लिख्यौ सु मैं अह्लाद ॥
कृपा सुदिनमणि किरन बहु लहि अवकास अकास ।
तितनोंई तहां होत है तितनी किरन प्रकास ॥
रस ग्रन्थनि रसरीति में निपुन कथन आख्यान ।
रसिक चक्रवर्त्ती महा साधु शील विद्वान ॥
तिन सौं मो सौं सुपन में पुनि प्रतिच्छ भये बैंन ।
जिन में प्रियता सुहृदता अरु कृपालता ऐंन ।
फुर्यौ चित्त आशय कछुक भाषा करौं बनाइ ।
यह सिंगार चूड़ामनि हि कियौ हियौ दै भाइ ॥
रसिकदास की विनती सब रसिकनि सौं एह ।
श्रीराधा परिकर विषैं मेरौ बढ़ौ सनेह ॥

—○—

* इति श्री शृङ्गार चूड़ामनि *

❀ श्री चक्रवर्त्तिजी के द्वारा रचित ग्रन्थ ❀

[१] श्रीकृष्णभावनामृत [२] श्रीगौरांगलीलामृत [३] ऐश्वर्य्य-कादम्बिनी [४] माधुर्य्यकादम्बिनी [५] स्तवामृतलहरी [६] भक्ति-रसामृतसिन्धुविन्दु [७] उज्वलनीलमणिकिरण [८] भागवतामृतकण [९] रागवर्त्मचन्द्रिका [१०] गौरगणचन्द्रिका [११] चमत्कारचन्द्रिका [१२] प्रेमसम्पुट [१३] ब्रजरीतिचिन्तामणि [१४] क्षणदागीति-चिन्तामणि। **टीका ग्रन्थ :—**

[१५] सारार्थदर्शिनी (समस्त भागवत की) [१६] सारार्थवर्षिणी (गीता की) [१७] आनन्दचन्द्रिका (उज्ज्वलनीलमणि की) [१८] भक्तिसार-प्रदर्शिनी (भक्तिरसामृतसिन्धु की) [१९] भक्तहर्षिणी (गोपालतापिनी की) [२०] ब्रह्मसंहिता की टीका [२१] महती (दानकेलिकौमुदी की) [२२] सुखवर्त्तिनी (आनन्दवृन्दाबन चम्पू की) [२३] सुबोधिनी (अलङ्कारकौस्तुभ की) [२४] हंसदूत की टीका [२५] चैतन्यचरितामृत की टीका [२६] प्रेमभक्तिचन्द्रिका की टीका।

स्तवामृतलहरी :—

ग्रन्था :—[१] गुरुर्व्वष्टकम् [२] गुरुचरणस्मरणाष्टकम् [३] परम-गुर्व्वष्टकम् [४] परात्परगुर्व्वष्टकम् [५] नरोत्तमप्रभ्वष्टकम् [६] श्री-लोकनाथाष्टकम् [७] शचीनन्दनाष्टकम् [८] स्वरूपचरितामृतम् [९] स्वप्नविलासामृतम् [१०] गोपालदेवाष्टकम् [११] मदनगोपालदेवाष्टकम् [१२] श्रीगोविन्दाष्टकम् [१३] श्रीगोपीनाथाष्टकम् [१४] गोकुलानन्द-गोविंदाष्टकम् [१५] स्वयंभगवत्त्वाष्टकम् [१६] जगमोहनाष्टकम् [१७] अनुरागवल्ली [१८] वृन्दावनाष्टकम् [१९] श्रीराधाध्यानम् [२०] श्री-रूपचिन्तामणि [२१] सङ्कल्पकल्पद्रुमः [२२] नन्दीश्वराष्टकम् [२३] वृन्दावनाष्टकम् [२४] गोवर्द्धनाष्टकम् [२५] श्रीकृष्णकुण्डाष्टकम् [२६] गीतावली।

———

श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिप्रणीत—

❀ श्रीभागवतामृतकणिका ❀

श्रीमद्भागवतामृतनिर्णीतसर्बप्राधान्यो योऽनन्यापेक्षिमहैश्वर्य माधुर्यः स श्रीकृष्ण एव स्वय रूपः ॥१॥

तस्य प्रायस्तुल्यशक्तिधारी यः स तस्य विलासः, यथा—वैकुण्ठनाथः। तस्मान्न्यूनशक्तिधारी यः तस्यांशः, यथा मत्स्यकूर्मादिकः ॥२॥

यत्रकैकशक्ति संचारमात्रं स आवेशः, यथा व्यासादयः ॥३॥

अथाऽवतारास्त्रिविधाः। पुरुषावतारा गुणावतारा लीलावताराश्च ॥४॥

तत्र यः प्रथमपुरुषो महत्तत्वस्य स्रष्टा कारणार्णवशायी प्रकृत्यन्तर्यामी सः संकर्षणांशः। द्वितीयपुरुषो यो गर्भोदशायी समष्टि विराडन्तर्यामी ब्रह्मणः स्रष्टा स प्रद्युम्नांशः। तृतीयपुरुषो यः क्षीरोदशायी व्यष्टिविराडन्तर्यामी सोऽनिरुद्धांशः ॥५॥

अथ गुणावताराः। सत्वगुणेन विष्णुः पालनकर्ता क्षीरोदनाथ एव। रजोगुणेन ब्रह्मा सृष्टिकर्ता गर्भोदशायिनाभिपद्मोद्भवः। क्वचित् कल्पे तादृश पुण्यकारी जीव एव ब्रह्मा। तदा तत्र ईश्वरस्य शक्ति संचारेणावेशावतार एव। तदा तस्य रजोगुणयोगाद् विष्णुना न साम्यम्। क्वचित् कल्पे स्वयमेव विष्णुर्ब्रह्मा भवति। यथा कदाचित् स्वयमेव इन्द्रो यज्ञः। तदा तस्य साम्यमेव।

पातालादिसत्यलोकान्तसमष्टि विराट् स्थूलो ब्रह्मण एव विग्रहः प्राकृतः सोऽपि ब्रह्मा। तस्य जीवः सूक्ष्मो हिरण्यगर्भः सोऽपि ब्रह्मा। तस्यान्तर्यामी गर्भोदशायीश्वर एव। अथ तमोगुणेन शिवः संहारकर्ता, स्थूलवैराजसंज्ञः सूक्ष्म हिरण्यगर्भसंज्ञः सृष्टिकर्ता पद्मोद्भवःईश्वर एव क्वचित् कल्पे जीवश्च क्वचित् कल्पे स्वयं विष्णुरपि। किं च सदाशिवः स्वयंरूपाङ्गविशेष स्वरूपो निर्गुणः सः शिवस्यांशी। अत एवाऽस्य ब्रह्मतोऽप्याधिक्यं विष्णुना साम्यं च, जीवात्तु सगुणत्वेऽसाम्यं च ॥६॥

अथ लीलाऽवताराः, चतुःसन–नारद–वराह–मत्स्य–यज्ञ–नरनारायण–कपिल–दत्त–हयशीर्ष–हंस–पृश्निगर्भ–ऋषभ–पृथु–नृसिंह–कूर्म–धन्वन्तरि–मोहिनी–वामन–परशुराम–रघुनाथ–व्यास–बलभद्र–कृष्ण–बुद्ध–कल्कि प्रभृतयः। एते प्रतिकल्पं प्रादुर्भवन्तीति ॥७॥

अथ मन्वन्तरावताराः यज्ञ–विभु–सत्यसेन–हरि–वैकुण्ठ–अजित–वामन–सार्वभौम–ऋषभ–विष्वक्सेन–धर्मसेतु–सुदामा–योगेश्वर–वृहद्मानवः ॥८॥

अथ युगावताराः–शुक्ल–रक्त–श्याम–कृष्णाः ॥९॥

एषां मध्ये केचिदावेशाः केचित् प्राभवाः केचिद् वैभवाः केचित्परावस्थाः ॥१०॥

चतुःसननारदपृथुप्रभृतय आवेशाः। मोहिनी-धन्वन्तरि-हंस ऋषभ व्यास दत्त शुक्लादयः प्राभवाः ततोऽप्यधिक शक्ति प्रकाप्रकाशकाः वैभवाः, मत्स्य-कूर्म-नरनारायण-वराह-हयशीर्ष-पृश्निगर्भ-वलभद्र-यज्ञादयः। ततोऽप्यधिका परावस्था उत्तरोत्तर श्रेष्ठाश्रयो नृसिंह राम-कृष्णाश्च। कृष्ण एव स्वयं भगवान् तस्मादधिकःकोऽपि नास्ति ॥११॥

तस्य वासस्थानानि पूर्वपूर्वमुख्यानि चत्वारि-ब्रजे मधुपुरे द्वारावत्यां गोलोके च। कृष्णोऽपि सपरिवारो बलदेवसहितो ब्रजे पूर्णतमः, मथुरायां पूर्णतरः, द्वारकायां प्रद्युम्नानिरुद्धाभ्यां परिवार सहितः पूर्णः गोलोके पूर्णकल्पोऽपि वृन्दाबनीयलीलत्वात् पूर्णतमसजातीयः। पूर्वपूर्वेषु माधुर्याधिक्यतारतम्यादैश्वर्यस्याच्छादनतारतम्यम्-उत्तरोत्तरेषु माधुर्यह्रास--तारतम्यादैश्वर्यस्य प्रकाशतारतम्यम् ॥१२॥

यस्या जले कोटि कोटि ब्रह्माण्डानि महाविष्णुरोमकूपगतानि तस्या विरजायाः परिखाभूताया उपरि महावैकुण्ठलोकः। तस्योर्ध्वभागे गोलोकः। तत्र गोलोकनाथः श्रीकृष्णो देवलीलः सपरिवारो वर्त्तते। तस्य विलासःपरमात्मा परव्योमनाथो ब्रह्म च निर्विशेषस्वरूपम्। गोलोकनाथस्य द्वितीयव्यूहो यो वलदेवस्तस्य विलासो महावैकुण्ठे संकर्षणः। तस्यांशः कारणार्णवशायी। तस्य विलासो गर्भोदशायी ब्रह्माण्डान्तर्यामी प्रद्युम्नांशः। तस्य विलासः क्षीरोदशायी अनिरूद्धांशः। मत्स्यकूर्माद्यवतारः गर्भोदशायिविलासः अथ–द्वारका–मथुरा वृन्दाबनाख्ये धामत्रये श्रीकृष्णस्य नरलोलाऽधिक्यतारतम्यात्–क्रमेण माधुयाधिक्यतारतम्यम् ॥१३॥

सा लीला द्विविधा, प्रकटा अप्रकटा च। या युगपद् वाल्य पौगण्ड–कैशोर–विलासमय्यः सपरिकरस्य कृष्णस्यानन्त प्रकाशैः–नित्यमेवाप्रकटलीला वर्त्तन्ते ता एव एकेनैव प्रकाशेन सपरिवारेण श्री कृष्णेन यदा प्रपंचे क्रमतः प्रकाश्यन्ते तदा प्रकटेति। गमनागमने तु तत्तद्धामतः प्रकट लीलायामेवेति विशेषः। प्रकटालीला च जन्मादिमौषलान्ता प्रत्येकं ब्रह्माण्डसमूहक्रमेण तत्र तत्रस्थै दृश्यत इति। एकमेव वृन्दाबनम् एकैव

मथुरा एकैव द्वारावती च ब्रह्माण्ड कोटि समूह मध्यगभारतभूमा तद्वासिजनै र्दृश्यते।

यथा ज्योतिश्चक्रस्थसूर्यकिरणावलीति। यथा ज्योतिश्चक्रस्थ एव सूर्य एकस्मिन् वर्षे पूर्वाण्हादिकं समाप्यान्यस्मिन वर्षे प्रकाशयति, कुत्रचिन्न प्रकाशयति च। एवमेव श्रीकृष्णो निजधामस्थ एव प्रकटप्रकाशे एकस्मिन्ब्रह्माण्ड-समूहे वाल्यादिलीलां समाप्यान्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे प्रकटयति अन्यस्मिन् ब्रह्माण्डसमूहे कामपि न प्रकटयतीति। प्रकटेऽपि वाल्यादिलीलानित्यमेव सच्चिदानन्दरूपाः किन्तु मौषलान्तलीला महिषीहरणलीला चेन्द्रजालवत् कृत्रिमैव लीलान्तरस्य नित्यत्वसंगोपनार्थ ज्ञेया। तयोरुपासकाभावात्।

किं च—प्रकटलीला मध्ये वृन्दाबनस्य मणिमयवृक्षभूम्यादित्वं तत्परिवारेणापि केनचिद् दृश्यते-केनचिन्न दृश्यते च तदिच्छावशात्। प्रकटलीला समाप्त्यनन्तरं तु तत्रस्थजनेन भजनाधिक्येनाऽत्युत्कण्ठायां वर्तमानायामेव दृश्यते। तत्रापि स्ववासना तदिच्छानुसाराभ्यामिति विवेकः। एवं च सर्वस्वरूपेभ्य व्रजेन्द्रनन्दनस्य मुख्यत्व सर्वधामतो गोकुलस्यैव मुख्यत्वम्।

चतुर्धा माधुरी तस्य व्रज एव विराजते।
प्रेमक्रीड़नयोर्वेणोस्तथा श्रीविग्रहस्य च ॥१४॥

अथ भागवतास्तेच—

मार्कण्डेयोऽम्बरीषश्च वसुर्व्यासो विभीषणः।
पुण्डरीको बलिः शम्भु प्रह्लादो विदुरोद्धवो ॥
दाल्भ्यः पराशरो भीष्मो नारदाद्याश्च वैष्णवाः।
सेव्यो हरिरमी सेव्या नोचेदागः परं भवेत् ॥

एषां मध्ये प्रह्लादः श्रेष्ठः, ततोऽपि पाण्डवाः श्रेष्ठः, तेभ्योऽपि केचिद् यादवाः, तेभ्योऽप्युद्धवः, तस्मादपि ब्रजदेव्यः, ताभ्योऽपि श्री मद्राधेति ॥१५॥

अनधीतव्याकरणश्चरण- प्रवणो हरेर्जनो यःस्यात् ।
भागवतामृतकणिका मणिकांचनमिवाऽनुस्यूता ॥

इति महामहोपाध्याय श्री विश्वनाथचक्रवर्तिविरचिता

❀ भागवतामृतकणिका समाप्तिमिता ❀

।। श्री राधावल्लभो जयति ।।

❀ लिखतं रससिद्धान्त चिंतामणि ग्रंथः ❀

दोहा—श्री हरिवंस हि अनुसरत प्रसरत बुद्धि प्रकास।
शास्त्र सिंधु मैं रत्न जो सो पैयतु अनियास ।।१।।
श्री राधा सुकटाछ सौं नित वस कृष्ण किशोर।
तिनकौं वंदन करत हौं सीस नाइ कर जोरि ।।२।।
कहौं कछू निरनें जु ई मधि भागौत पुरान।
आँन अपेक्षा करैं नहिं सवनि मांझ परधान ।।३।।
स्वयंरूप श्रीकृष्ण ही निश्चै किय निरधार।
वड़ ईश्वर्ज माधुर्ज जिहि पायौ परत न पार ।।४।।
तिन सम कछु घटि शक्ति जिहि सो तिनको सुविलास।
जथा महा वैकुंठ के नाथ सुनहूँ हुल्लास ।।५।।
तिन तें न्यूंन है शक्ति जिन ते तिनहीं कौ अंस।
ज्यौं मत्स्य कूर्म इत्यादिक हुँ जानि लेहु निरसंस ।।६।।
एक शक्ति संचार ही मात्र सुई आवेस।
जथा सुपृथु जिन चरित कौं गावत दिसा दिगेस ।।७।।
विलास मूर्ति अरु अंस पुनि कहि आवेस सुवेस।
अवतार त्रिविध अव सुनो अद्भुत भांति सुदेस ।।८।।
इक पुरुषा अवतार अरु दूसरौ गुन अवतार।
तीसरौ ई जो कह्यौ कल सो लीला अवतार ।।९।।
प्रथम पुरष अवतार है महत् जु स्त्रष्टा नाम।
सेंन करत कारन समुद्र सुखद महा अभिराम ।।१०।।

अंतरजामी प्रकृति के श्री संकर्सन अंस।
जिन कौ जस जग मगि रह्यौ श्री भागोत प्रसंस ॥११॥
दुतिय पुरुष जो सो सुनो गर्भोदक किय सेंन।
समष्टि निराट के हें अहो अंतरजामी अेंन ॥१२॥
श्री पद्यु म्न के अंस ये सुनि गुनि मन मैं राखि।
तृतिय पुरुष जो अबर लहि पुनि तिनहीं कौं भाषि ॥१३॥
क्षोरोदकशायी तृतिय तिन कौ यहै प्रसंग।
व्यष्टि विराट के आंहि ये अंतरजामी रंग ॥१४॥
श्री अनिरुद्ध के अंस हैं क्षीरुदशायी एव।
जथा सुमति कछुक लिख्यौ पुरुष वतारनि भेव ॥१५॥

अथ गुनावतार—

सत्व सु गुन तें विष्णु हैं पालन कर्त्ता जानि।
सो क्षीरोदक नाथ ही निश्चै ही मन आनि ॥१६॥
रज गुन तें ब्रह्मा समझि कर्त्ता स्त्रष्टि जु गाइ।
गर्भोदशायिको नामि कमल तें प्रगट्यौ आइ ॥१७॥
कबहूँ काहू कल्प में तैसौ ई कर्त्ता पुन्य।
जीव सु ब्रह्मा होत है महत सुकृत करि धन्य ॥१८॥
तहां ईश्वर की आहि जो सृष्टि शक्ति संचार।
ताही के आवेस करि ब्रह्मा सो निर्धार ॥१६॥
रजगुण तें जो प्रगट सो विष्णु की नांहि समान।
यहै धारि मन सुनि श्रवन पुनि औरौ आख्यान ॥२०॥
कवहूँ काहू कल्प में विष्णु ही ब्रह्मा होंहि।
जैसें कबहूँ आप हूं इन्द्र यज्ञ हू जोंहि ॥२१॥
तब तिन हीं की साम्य हैं निश्चै चित्त हि लाइ।
आप ही विष्णु भये जहाँ भेद कहा तब आइ ॥२२॥

पाताल आदि सप्त लोक लों सब ब्रह्मांड स्थूल।
विधि विग्रह निश्चै सु यह प्राकृत नस्वर मूल ॥२३॥
ता कौ जीव जु कहत हौं हियें विचारो बात।
हिरण्यगर्भ सूछिम कह्यौ सोऊ ब्रह्मा ख्यात ॥२४॥
अंतरजामो तासु के गर्भोदशायी ईस।
तप आग्या जाकौं दई करी नवायौ सीस ॥२५॥
अब तमगुन तें सुनों तुम शिव कर्त्ता संहार।
काहू कल्प में जीव अरु कवहूँ विष्णु निहार ॥२६॥
कब हूं सदासिव होत हैं रुद्र करन संहार।
स्वयं रूप के अंग हैं विशेष स्वरूप विचार ॥२७॥
इन्हें भनें निर्गुन अवर सगुन शिवांसी जानि।
यातें ब्रह्मा तें अधिक विष्णु की आंहि समान ॥२८॥
अथ लीला अवतार जे वरन हु कृपा प्रसाद।
रसिक दास शुक मुख वचन श्रवन सुने अहिलाद ॥२९॥
प्रथम चतुर सनकादिक दुतिय श्रीनारदभाष।
तृतिय भनें वाराह जू मत्स्य चतुर्थ भिलास ॥३०॥
पंचम यज्ञ सु और सुनि नरनारायण देखि।
कपिल देव सप्तम सही अष्टम दत्त हि लेखि ॥३१॥
हयशीर्षा नवम कथ दसम हंस सुख रूप।
प्रश्नगर्भ एकादसौं द्वादस ॠषभ अनूप ॥३२॥
पृथु त्रोदश नरसिंह जी आंहि चतुर्दश ऐत।
कूर्म पंचदश षोड सें धन्वंतर सुख देत ॥३३॥
आंहि सप्तदस मोहिनी वामन दश अरु आठ।
परसराम उनईसवें राम विंश करौ पाठ ॥३४॥

व्यास एकविंशत अवर विवि बिंशत वलदेव।
त्रै विंशत श्री कृष्ण जू स्वयं रूप लखि लेव ।।३५।।

वुद्ध चतुरविंशत भनें कल्की पंच रु विंश।
एते प्रगट कलप प्रति स्वयं रूप अरु अंस ।।३६।।

इतनें कला रु अंस कहि सवै पुरुष के जान।
सर्वांशी यकै येई कृष्ण स्वयं भगवान ।।३७।।

मन्वन्तर अवतार अब गनना गनि मन धारि।
प्रथम यज्ञ विभु दुतिय अरु सत्यसेंन सुख सार ।।३८।।

चौथे हरि वैकुंठ लहि अजित सुछह पुनि आन।
वामन सात जु आठवें सार्वभौम पहिचान ।।३९।।

ऋषभ नवम दसवैं लहौ विष्वक्सेन बखान।
धर्मसेत एकादसौं द्वादस सुनि दै कांन ।।४०।।

कहे सुधामा वारहें योगेश्वर दस तीन।
वृहद्भ्रन चौदह सु ये जानत वड़े प्रवीन ।।४१।।

अथ जुग अवतारनि मन धरौ हिय मधि इहि विधि सव।
शुक्ल रक्त अरु स्याम पुनि कृष्ण चतुर मन देव ।।४२।।

इन महि कोऊ आवेस है कोऊ हैं सुनि चित धरि।
प्राभवाह अरु और जो वैभवाह छवि चारु ।।४३।

कोउक परावस्थाह हैं सो व्यौरौ इहि भांति।
रसिकदास गुरु कृपा विन सवकी मति अर भ्रांति ।।४४।।

सन नारद हरि विभु जु पृथु इत्यादिक आवेस।
शक्तिमंत तिन तें अधिक प्राभवाह विभु एसु ।।४५।।

मोहनी धन्वंतर ऋषभ हंस व्यास अरु दत्त।
शुक्लादय हि विचार सौं नीकें धरि जौ चित्त ।।४६।।

शक्ति प्रकाशक अधिक ये तिनहूँ तें मन धारि।
कहौं कृपा बल कै अहौ वैभवाह निरधार ॥४७॥
मत्स्य कूर्म कल और हू नरनारायन वद्र।
श्री वराह हयशीर्ष पृश्नगर्भ वलभद्र।४८॥
यज्ञ आदि दै ये कहे वैभवाह हिय लाइ।
तिन हूं तें अधिके सुये परावस्थाहि लिखाइ ॥४९॥
उत्तरोत्तर श्रेष्ठ हें ये तीनों चिते देव।
नृसिंह राम,वर कृष्ण गुनि सुनि शुक मुखकौ भेव ॥५०॥
कृष्ण स्वयं भगवान हैं इन तें अधिक न कोइ।
तिन के वास स्थान अब कहौं प्रीति सों जोइ ॥५१॥
पूर्व पूर्व लखि मुख्यता चारि आहि परिधान।
ब्रज सु मधुपुरी द्वारिका अरु गोलोक वखान ॥५२।
कृष्ण ब्रज विषैं लिखैं मुनि सपरिवार उरधारि।
बलदेव सहित ब्रज में सदा पूरनतम निरधार ॥५३॥
मथुरा पूरनतर सही पूर्ण द्वारिका माँह।
गोलोक पूरन कलप भनों कछू तिहि ठाँहि ॥५४॥
वृन्दाबन संबंधिनी लीलनि कै लै जान।
पूरनतम सु सजाति हैं व्यास पुरान वखान ॥५५॥
पूर्व पूर्व माधुर्य कौ अधिक तारतम भेव।
अरुढापनईश्वर्ज कौ समझि तारतम लेव ॥५६॥
उत्तरतें उत्तर विषैं आहि घटनि माधुर्य्य।
तारतम्य इमि कह्यौ कलवर प्रकाश ईश्वर्ज।५७॥
जिन विरेजा के जल विषैं कोटि ब्रह्मांडनि लेखि।
श्री महाविष्णु के रोम के कूप मध्य ही देखि ॥५८॥

तिनकी बिरजा की जहां खाई ऊपर ओर।
महा बैकुंठ सु लोक है अद्भुत सोभा ठौर ॥५६॥
ऊर्द्ध भाग ताके तहां है गोलोक अनूप।
तहां गोलोक सुनाथ जू राजत सोभा भूप ॥६०॥
देवलील श्री कृष्ण जो सो येई निर्धार।
परिवार सहित तहां रहत नित लीजो मनहि विचार ॥६१॥
तिन के आंहि विलास श्री महावैकुंठ के नाथ।
परमव्योम सुनाथ हो नाम ख्यात है गाथ ॥६२॥
तिन के विलास हि जानि लै वासुदेव सुनि एव।
तिन विलास परमात्मा अर ऊन समझौ भेव ॥६३॥
लहौ ब्रह्म पुनि मन धरौ निर्विशेष जो रूप।
औरौ व्यौरौ है सुई सुनियों श्रबन अनूप ॥६४॥
गा लोकनाथ के आंहि जू दुतिय व्यूह बलदेव।
तिनके विलास हि हुलस हिय निश्चै करि धरि लेब ॥६५॥
महाबैकुंठ में आंहि वर श्री संकर्सन ते जु।
तिनहीं के ये अंस हैं कारनोद मै जे जु ॥६६॥
तिन विलास हैं कहैं मुनि संसै छेदन हार।
गर्भोदक शायी सही प्रद्युम्नंस विचार ॥६७॥
विधि अंतरजामी सुये कहै धरौ हिय मद्धि।
समझैं साधु सुबुधि जे जिन की मति है शुद्ध ॥६८॥
तिनके विलास हि अब सुनों क्षीरोदक किय सैंन।
श्री अनिरुद्ध के अंस हैं बुद्धिवंत लहै चैंन ॥६९॥
इनहीं कौं यों मन धरौ अंतरजामी व्यष्ट।
गुढ पुराननि तें कियौ सोध साधु यह स्पष्ट ॥७०॥

मत्स्य कूर्म्म अवतार जे वे इहि भांति लसांहि।
श्री गर्भोदक शायि के सवै विलासहि आँहि ॥७१॥

अब सु द्वारिका मधुपुरी वृंदाबन त्रै धाम।
कृष्ण सु नरलीलत्व के अधिक तारंतम ठाम ॥७२॥

क्रम सौं है माधुर्य को अधिक तारतम एव।
अरु लीला दुबिधा अहौ प्रगटाप्रगटा भेव ॥७३॥

बाल कुमार किशोर जो वर विलास मय चार।
परिकर सहित सुकृष्ण कौं सुनो करौं उच्चार ॥७४॥

अनंत प्रकाशनि कै महा नित्य विराजत एव।
अप्रकटा लीला विषैं यह जानियौं भेव ॥७५॥

एक एव परकास करि परिकर सहित बिलास।
जब प्रपंच में कृष्ण जू क्रमसौं करैं प्रकास ॥७६॥

तब कहियत लीला प्रगट इति बिवेक मन हेत।
औरों हू सुनों श्रवन दै कहों कछू मति जेत ॥७७॥

गमनागमन विचार यह तिन थामनि तें देखि।
प्रगट सुलीला मध्य ही इतनोंई जु विशेष ॥७८॥

एक एव बृंदाबन मथुरा एक ही जान।
द्वारावती जु एक ही यों लीजौ उर मानि ॥७९॥

अंड समूहनि कोटि में मधिगत भारत भूमि।
तिन तिन अंडनि के सवै वासो जन दिखें भूमि ॥८०॥

प्रगट जु लीला पुनि सुनों जनम आदि मुसलंत।
प्रत्येक ब्रह्मांड समूह में लीला चक्र भ्रमंत ॥८१॥

क्रम करि तहाँ तहां के जिते रहन जु हारे कोइ।
देखत है जिहि भांति सौं कहौं व संसै खोइ ॥८२॥

जैसें जोतिश्चक्र में रवि किरनावलि आंहि।
पुनि ज्यौं जोतिश्चक्र ही सूरज एव लसांहि ॥८३॥
एक खंड में पूर्ण ज्यौं पूर्वकाल ह्वै जाइ।
और खंड में होत है कल प्रकास सुख दाइ ॥८४॥
कहूँ प्रकास न होत है ऐसे हि कृष्ण विलास।
प्रकट प्रकास विषै जुई निजु धामहि जिन वास ॥८५॥
वृन्दाबनादि निज धाम त्रे चक्र स्थानी जानि।
सूर्ज स्थानी कृष्ण जिमि यहै प्रगट व्याख्यान ॥८६॥
समयस्थानी जानियें बाल्यादिक लीलानि।
यह दृष्टान्त सु ऐसे ही जानत जे धीमान ॥८७॥
एक कृष्ण अरु धाम इक शक्ति अचिंत अनूप।
अंड समूहनि कोटि में भासमान कृष्ण रूप ॥८८॥
एक ब्रह्मांड समूह में चरित बाल लीलादि।
ह्वै समाप्त पुनि और में सुनहु संत अहिलाद ॥८९॥
अन्य ब्रह्मांड समूह में प्रगटत यों चित देव।
कोऊ ब्रह्मांड समूह में प्रगटत नहिं सुनि लेव ॥९०॥
प्राकृत अप्राकृत जु है भेद ब्रह्मडंनि देखि।
प्राकृत गयें सु रहत है अप्राकृत ही पेखि ॥९१॥
अप्राकृत ब्रह्मांड जे ब्रह्मा देखे चारु।
वृन्दाबन में कृपा करि दिखयें नंद कुमार ॥९२॥
प्रगट विषै वाल्यादि जो लीला नित्य अनूप।
आंहि सचिदानंद जू एव मन धरौ रूप ॥९३॥
यै मूसल महिषी हरन लीला यों निरधार।
इंद्रजाल वत कृत्रिमे निहंचै मनमें धार ॥९४॥

लीलान्तर नित्यत्व कौ संगोपन के अर्थ।
यहै जानिवौ जानिवौ और जानिवौ व्यर्थ ॥६५॥
मूसल महिषी हरन जो सो यों मन में ल्याव।
इन दोनोंनि उपासकनि है निरधार अभाव ॥६६॥
परन्तु रहत है यहै सुनि लीला अंतर सोइ।
मायिक सृष्टि के नास हूं नास न ताकौ होइ ॥६७॥
अचिंत जोगमाया जु है तिहि अनुमोदन कीन्ह।
कृत्रिमता के कृत्रिम हि आहि नित्यता चीन्ह ॥६८॥
कछू प्रगट लीला विषैं सुनो और यह बात।
वृन्दावन मनिमय सुतरु अवनि भवन झलकात ॥६९॥
तिन के परिकर विषैं होऊ देखत कोऊ नांहि।
उन की इछावस सोई इम समझो इहि ठाहि ॥१००॥
प्रगट जु लीला समापति ता अंतर जे और।
उहां रहत उन हीं विषै भजन अधिक करैं दौर ॥१०१॥
अति उतकंठा वृत्त सौं तेऊ देखत चारु।
सुठि सुवासना भावना तिन इछा अनुसार ॥१०२॥
इति विवेक मन एक करि गहि गहरैं ही प्रेम।
रसिक उपासिक यों समझि और समझि कियो नेम ॥१०३॥
ऐसैं निश्चै करि सही सब स्वरूप तें मुख्य।
एक एव नंद नंद ही सो सब कौं करो तुष्य ॥१०४॥
सब धामनि तें तैसें ही गोकुल मुख्य है जानि।
बृन्दाबन जासों कहत बड़े रसिक धीमान ॥१०५॥
चारि प्रकार सुमाधुरी ब्रजहि विराजत जोइ।
ईश्वर्ज्जरु क्रीडा वेंनु पुनि श्री विग्रह सम कोइ ॥१०६॥

अब भक्तनि कौं कहौं जू सुनियौ चित्त लगाई।
बड़े मारकंडे अवर अंबरीष सुखदाइ ॥१०७॥
वसुजु व्यास सुखरासि हैं भनों विभीषन वेंन।
पुंडरीक वलि शंभु अरु प्रह्लाद विदुर ध्रुव चेंन ॥१०८॥
दाल्भ परासर भीष्म वर नारदादि पुनि आंन।
इन सु वैष्णव भव्य जो श्रेष्ठ कहौं लै जांन ॥१०९॥
इन सब में प्रह्लाद जू श्रेष्ठ आँहि मन राखि।
तिन तें पांडव श्रेष्ठ हैं और सुनांऊ भाषि ॥११०॥
तिन हीं तें कोइक जु हैं जादव जानों मींति।
तिन हु विषें उद्धव अधिक प्रगट विराजत प्रीत ॥१११॥
तातें ब्रज देवी अधिक इन तें नाहीं और।
तिन ब्रजदेविनि की सु हैं श्री राधा सिर मौर ॥११२॥
श्रीराधा सुकटाछ सौं वंधे रहत निसि भोर।
प्रभुता भूली प्रेम सौं ये श्री कृष्ण किशोर ॥११३॥
आरष ग्रंथनि साक्षी देत ग्रंथ बढि जाइ।
सूछिम तें सूछिम लिख्यौ कछू अमृत कन लाइ ॥११४॥
जो कदाचि विस्तार सौं श्रमन जु इछ होइ।
श्री महाप्रभू के पारषद श्री रूप लिख्यौ सो जोइ ॥११५॥
भागवतामृत नाम इम ख्यात रूप किय देखि।
वृहत मांझ बहुते लिख्यौ लघुतें समझि विसेरि ॥११६॥
ख्यात चक्रवर्ति कि हैं साधु सुशील अनूप।
मन अनुशीलन करि रहै भजन रीति श्रीरूप ॥११७॥

कठिन प्रकरन व्याकरन कौं चरक रेंनु कन साधु।
माथें धरि भाषा कियौ हरि राधा आराधि ॥११८॥
प्रियजन जे वृषभानुजा जाचौं तिन सौं नित्त।
रसिकदास सिद्धांत फल होहु तिन विषैं चित्त ॥११९॥
रस सिद्धांत चिंतामनि हि रचि क्व हेम जराइ।
रसिकनि सद्गुरण गृथित हिय झलकहुं नाना भाइ ॥१२०।

इति श्री रससिद्धान्तचिंतामरिण पूर्ण ॥

अब तक प्रकाशक के द्वारा प्रकाशित

ग्रंथ संख्या—१०९

व्रजभाषा में—४२

(सानुवाद) संस्कृतभाषा में—६५

समीक्षा— २

गौड़ीयग्रन्थगौरवः—

सानुवादसंस्कृतभाषायां प्रकाशितानि

१—अर्च्चाविधिः (संग्रहीत) ।)

२—प्रेमसम्पुटः (श्रीबिश्वनाथचक्रवर्त्तीकृत) ।)

३—भक्तिरसतरङ्गिणी (श्रीनारायणभट्टजीकृता) १)

४—गोबर्द्धनशतक (श्रीविष्णुस्वामी संप्रदायाचार्य्य श्रीकेशवाचार्य्य कृत) ।)

५—चैतन्यचन्द्रामृत और सङ्गीतमाधव (श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती कृत) १।)

६—नित्यक्रियापद्धतिः (संग्रहीत) ।।=)

७—व्रजभक्तिविलासः (श्रीनारायणभट्टजी कृत) २।।)

८—निकुञ्जरहस्यस्यस्तवः (श्रीमद्रूपगोस्वामी कृत) ।)

९—महाप्रभुग्रन्थावली (श्रीमन्महाप्रभुमुखपद्मबिनिर्गता) ।—)

१०—स्मरणमंगलस्तोत्रम् (श्रीमद्रूपगोस्वामिकृत) ।।=)

११—नवरत्नम (श्रीहरिरामव्यासजी कृत) =)।

१२—गोविन्दभाष्यम (श्रीपादबलदेवजी कृत) ४।।)

१३—ग्रन्थरत्नपंचकम् १।।)

[१] श्रीकृष्णलीलास्तवः (श्रीपादसनातनगोस्वामि कृत)

[२] श्रीराधाकृष्णगणोद्देशदीपिका (श्रीश्रीरूपगोस्वामिजीकृता)

[३] श्रीगौरगणोद्देशदीपिका (श्रीकविकर्णपूरजी कृता)

[४] श्रीव्रजविलासस्तवः (श्रीश्रीरघुनाथदासगोस्वामिजी कृत)

[५] श्रीसंकल्पकल्पद्रुमः (श्रीविश्वनाथचक्रवर्तीजीकृत)

१४—श्रीमहामन्त्रव्याख्याष्टकम् (सचित्र) ।)

१५—ग्रन्थरत्नषटकम् ॥=)

१६—श्रीगोवर्द्धनभट्टग्रन्थावली ॥=)

१७—सहस्रनामत्रयम अथवा ग्रन्थरत्ननवकम् ॥)

१८–श्रीनारायणभट्टचरितामृतम (श्रीजानकीप्रसादगोस्वामिकृत) ॥)

१९—उद्धवसन्देशः (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितः) ।=)

२०—हंसदूतम (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्) २॥)

२१—श्रीमथुरामहात्म्यम् (श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितम्) ॥=)

२२—मुरलीमाधुरी (सचित्र) ।–)

२३—राधाकृपाकटाक्षस्तोत्रम् =)

२४—श्रीपद्मांकदूतम् (श्रीकृष्णदेवजीकृत) ।)

२५—श्रीशुकदूतमहाकाव्यम (श्रीनन्दकिशोरगोस्वामिकृतम) १॥)

२६—ग्रन्थरत्नत्रयम् ॥)

[१] श्रीकृष्णाष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम् (श्रीवृन्दावनदास)

[२] श्रीगोपालस्तवराजभाष्य ,,

[३] श्रीलाडिलेयाष्टकम् (श्रीनारायणभट्ट कृत)

२७—व्रजोत्सवचन्द्रिका (श्रीनारायणभट्ट कृता) १)

२८—ग्रन्थरत्नत्रिकम् (श्रीचक्रवर्त्तीजी विरचितम्) ॥)

———

मुद्रकः—लोक साहित्य प्रेस, मथुरा ।